यायावरी

(मैथिली यात्रा संस्मरण)

डॉ० शेफालिका वर्मा

हिन्दी अनुवाद - कल्पना झा

प्रकाशन

जिज्ञासा प्रकाशन (ओ.पी.सी.) प्रा. लि.
ई-८६, स्वर्ण जयंती पुरम,
ग़ाज़ियाबाद -२०१००२ (उ.प्र.)

यायावरी

डॉ शेफालिका वर्मा

हिन्दी अनुवाद कल्पना झा

विषय सूची

भूमिका

शेफालिका वर्मा जी की लिखी यायावरी का हिन्दी अनुवाद की पाण्डुलिपि मेरे हाथों में है . कमाल का वर्णन है , गजब की सहजता है , लेखन में पाठकों को बाँधने का अद्भुत जादू है , उससे भी ज्यादा उसका अनुवाद .. **जॉन कनिंगटन के अनुसार :** 'लेखक ने जो कुछ कहा है, अनुवादक को उसके अनुवाद का प्रयत्न तो करना ही है, जिस ढंग से कहा, उसके निर्वाह का भी प्रयत्न करना चाहिए।'
देवेन्द्रनाथ शर्मा ने भी कहा है : 'विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरित करना अनुवाद है।' और इस धरातल पर यायावरी का हिन्दी-अनुवाद करने वाली कल्पना झा जी एक दम खरी उतरी हैं .
प्रस्तुत पुस्तक 'मैथिली पुस्तक यायावरी (यात्रा –संस्मरण संग्रह)' का हिन्दी –अनुवाद है . इस पुस्तक में मात्र पांच यात्रायें संगृहीत हैं , कलकत्ता , दिल्ली , उड़ीसा , डिब्रूगढ़ और जम्मू की ;
कहने को तो पांच यात्रायें मात्र हैं , पर इन यात्राओं की अंतर्कथाओं में न जाने कितनी यात्रायें और सन्निहित है , सभी साहित्यिक यात्रायें हैं ,किन्तु डिब्रूगढ़ की यात्रा व्यक्तिगत रही है . सभी में व्यष्टि से समष्टि ,समष्टि से व्यष्टि - संस्कार-संस्कृति की झलक है , जिसका सफल अनुवाद कर कल्पना जी ने इसे बिंदु से सिन्धु में समाहित कर दिया है . कई जगह तो मैथिली के शब्दों को भी यथावत् रखा है, अनुवाद में जिससे इसकी मौलिकता में भी चार चाँद लग गये हैं .

ओह ! कितनी रोमांचक है कलकत्ता की बातें. साहित्य-अकादमी , दिल्ली द्वारा आयोजित , पूर्वांचलीय कवियों की पांच दिवसीय कार्यशाला , कलकत्ते का वर्णन , बस की भीड़ , टैक्सी के धूप-छांव , स्वागत-सत्कार .. जाने-माने लेखकों का और प्रबुद्ध जनों का इतना सरल मन को छूनेवाला व्यवहार . शुरुआत के संकोच के साथ-साथ आलोचना की फुसफुसाहट फिर धीरे-धीरे खुलना,प्रगाढ़ अपनापन में डूबना और विदा की भावभीनी घड़ियाँ पाठक की आँखों को नम करने में समर्थ हैं.कलकते की विशेषतायें ,वहाँ की संस्कृति , तौर-तरीके शेफालिका जी ने एक-एक की व्याख्या अपनी अभूतपूर्व शैली में की है. इसे हिन्दी भाषा में पढ़ ऐसा लगता है कि हर जगह मैं उपस्थित हूँ. वास्तव में आज की दुनिया में अनुवाद का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। शायद ही कोई क्षेत्र बचा हो जिसमें अनुवाद की उपादेयता को सिद्ध न किया जा सके।
दूसरी यात्रा दिल्ली की पहली बेहद लम्बी यात्रा किन्तु रास्ते की अलग-अलग झलकियाँ दिखाते हुये. कहीं पुत्र से मिलने की आतुर प्रतीक्षा है, कहीं पुत्री की परीक्षा की व्यग्रता . हर रुकनेवाले स्टेशन की महत्ता से अवगत कराती हैं हुई शेफालिका जी जब दिल्ली पहुँचती हैं तो राजधानी की हर ऊँच-नीच दिखाते-बताते पाठकों को पूरी दिल्ली की झलकियाँ दिखा जाती है , पाठक खो जायेंगे दिल्ली की वन-वीथियों में ..
तीसरी यात्रा कलिंग एक्सप्रेस से उड़ीसा की यात्रा का वृतान्त .. पत्थरों के शहर की तपिश , आग उगलता मौसम किन्तु शीतल हवा की बयार सी लगी शेफालिका जी को .. वहाँ के लोगों में मैथिली के प्रति उत्कट स्नेह और उत्साह का भाव देख . लोक-कविता पढ़कर एक तरफ हास्य का संचार कर रही थीं और दूसरी ओर अपनी मैथिली वक्तव्य से श्रोताओं को सम्मोहित . उड़ीसा के लोगों के संस्कार , अलग-अलग क्षेत्रों से आये कवियों- लेखकों का नाम सहित परिचय , उनका आपसी समभाव , उड़ीसा का खान-पान , अतिथि सत्कार और अंत में भावभीनी विदाई .. लेखिका ने हर भावनाओं को इस तरह अभिव्यक्त किया है जैसे पाठक भी शेफालिका जी के साथ ही यात्रा कर रहें हों .
चौथी यात्रा डिब्रूगढ़ की है जिसमें शेफालिका जी ने अपने बेटी-दामाद से सम्बंधित,रोंगटे खड़ी कर देनेवाले हृदय-विदारक अनुभवों को साझा किया है . राहत तब मिलती है जब दामाद स्वस्थ होने लगते हैं और बेटी के चेहरे की रौनक लौटती है . इसके अलावा अपनी-अपनी आस्था में लिप्त परिवार जनों की व्याकुलता , आपसी सम्बन्धों की

गरिमामय महत्ता -मधुरता और प्राकृतिक सौन्दर्य की सुन्दरता का जी भरकर आस्वादन पाठकों को उन्होंने करवाया है ..
अंतिम यात्रा जम्मू की है जो साहित्य अकादमी दिल्ली , के 'यात्रा-अनुदान' के प्रोजेक्ट पर गयी हैं . डोगरी भाषा की लेखिकाओं को साहित्य में पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है जो देश की अन्य भाषाओँ में शायद ही लेखिकाओं को मिलती है – जम्मू विश्वविद्यालय की जानकारियों का भी अनूठा अंदाज़ है . शेफालिका जी ने बरसों पहले एक बार मुझसे कहा था – दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोरीमल कोलेज के प्राचार्य श्री भीमसेन सिंह जी ने मुझसे कहा है –'इसका हिन्दी अनुवाद कीजिये शेफालिका जी , बच्चों को बहुत सारी जानकारी मिलेंगी –' और आज इतने बरसों बाद हिन्दी – अनुवाद देख अत्यंत ख़ुशी हो रही है .
यायावरी का समापन लेखिका ने अत्यंत प्रभावशाली ढ़ंग से किया है –माइल्स टू गो ----.
जहाँ एक ओर इलाहाबाद की मीठी-मीठी यादों का .. गंगा-यमुना-सरस्वती की कल-कल धारों का , महादेवी वर्मा के साथ बिताये अविस्मरणीय पलों का और विभिन्न मनमोहक घटनाओं का ज़िक्र हुआ है वहीं दूसरी ओर जम्मू के संस्कार ,रीति-रिवाज-सत्कार ,वहाँ के विद्वतजनों के साथ लोक भाषाओं एवं मातृभाषाओं की उपेक्षा-महत्वता तथा आवश्यकता पर गम्भीरता से परिचर्चा.. पाठकों के ज्ञान अर्जित करने की क्षुधा को काफी हद तक शान्त करता है .. सच तो ये है कि शेफालिका वर्मा जी ने यायावरी को बड़े ही कौशल के साथ , चित्रात्मक शैली में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है और इसके हिन्दी अनुवाद के लिए कल्पना जी को हार्दिक बधाई , नहीं तो पाठकों का बहुत बड़ा वर्ग इन अनूठी यात्राओं से वंचित रह जाता . कल्पना जी खुद ही हिन्दी –मैथिली की लेखिका हैं . हाल ही में प्रकाशित इनकी पुस्तक निनियाँ-बाल गीत बहुत ही लोकप्रिय हुई .
यायावरी के हिन्दी अनुवाद के लिये कल्पना जी को हार्दिक बधाई , सुधी आलोचकों एवं पाठकों के लिये अनुपम उपहार . यह पुस्तक अपने-आप में पठनीय भी है और संग्रहणीय भी . मेरी तरफ से लेखिका डॉ शेफालिका वर्मा को आत्मीय बधाई ...

मृदुला प्रधान
हिन्दी और मैथिली की वरिष्ठ लेखिका , दिल्ली

🌹🌹 भावाभिव्यक्ति 🌹🌹

"यायावरी "जीवन के अनगिनत खट्टे - मीठे अनुभवों से दो, चार करवाता एक यायावर मन का अनूठा यात्रा-वृत्तांत है। इसे पढ़कर मैने महसूस किया कि इंसान कितना भी बड़ा क्यों न हो जीवन जीना इतना सहज नहीं होता। और मेरा मन मचल उठा लेखिका के हृदय में छुपे झंझावातों से रुबरु होने को। और गोते लगाने लगी इनकी रचनाओं के सागर में ।
विद्वजनो से सुना है कि लिखने से पहले पढ़ें तभी आपकी लेखनी धारदार होगी। मगर मेरा मानना है कि लिखना सीखने के लिए पहले पढ़ना तो आवश्यक है ही पर उससे भी आवश्यक है अनुवाद करना, क्योंकि किसी भी पुस्तक को महज पढ़ लेने से हम उसकी बारिकियाँ ,गहराइयाँ, लेखक के मन के भाव आदि कहाँ समझ पाते हैं। वहीं अगर हम अनुवादक के दृष्टिकोण से पढ़ते हैं तो लेखक के मन, उसकी आत्मा, उसके हृदय में उतरने की पूरी कोशिश करते हैं।

" लेखक से भेंट " जी हाँ, साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित कार्यक्रम में मुझे डा०शेफालिका वर्मा से उनके विषय में उन्हीं से सुनने का अवसर मिला साथ ही उनसे उनके बारे में जानने, समझने और कुछ अपने मनमाफिक प्रश्न पूछने का भी। तभी मैने उनकी आत्मकथा 'किस्त-किस्त जीवन' (साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत)का हिन्दी अनुवाद करने की इच्छा जाहिर की। मगर कुछ अकादमिक औपचारिकताओं की वजह से मुझे स्वीकृति नहीं मिली।
कुछ दिनों बाद ही दीदी ने बड़े प्यार से 'यायावरी' पुस्तक हिन्दी अनुवाद के लिये मेरे हाथ में देकर मुझे अभिभूत कर दिया। मैं उनके मन को पढ़ने में कितना सफल हो पायी, मुझे नहीं पता ,पर इस पुस्तक और लेखिका के भावों को आपलोगों के समक्ष प्रस्तुत कर पायी या नहीं ये तो आप पाठक वृंद ही बता सकते हैं।

" डा०शेफालिका वर्मा " नाम और कृति बेशक उत्तुंग शिखर स्पर्श करती हो मगर उनसे मिलकर ऐसा लगता है जैसे इन्हें तो हम पहले से जानते हैं। अरे ये ? ये तो मेरी वही प्यारी दीदी हैं। जी हाँ! जो भी उनसे पहली बार मिलता है यही महसूस करता है। न कोई बड़प्पन, न कोई दिखावा,न कोई औपचारिकता। घमण्ड शब्द तो इनके शब्दकोष में है ही नहीं। और यही खासियत इनकी रचनाओं में भी है। मिट्टी की सोंधी-सौधी सुगंध से भरी हुई हृदय को झंकृत कर देने वाले भाव। और. और भी बहुत कुछ ।

जिज्ञासु होना मनुष्य की एक सहज प्रवृत्ति है । होना भी चाहिए ।तभी तो मनुष्य जीवन पथ पर सफलता का प्रत्येक कदम दृढ़ता से रखना सीख पाएगा। अनुभव बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। हम हर बात में अक्सर बोल जाते हैं कि ये बाल हमने धूप में सफेद नहीं किये हैं। मनुष्य जीवन पथ पर चलते चलते अनेक खट्टे मीठे अनुभव प्राप्त करता है और इन्हीं अनुभवों के माध्यम से वह जीवन जीने का सहज और परिष्कृत मार्ग अपनाता है। मगर कुछ लोग जीवन के असहज थपेड़ों को झेल नहीं पाते और टूटने लगते हैं। ऐसे में उसे किसी के सहारे की आवश्यकता पड़ती है।अर्थात सच्चे पथ प्रदर्शक की आवश्यकता पड़ती है । यही वो संवेदनशील समय होता है जब मनुष्य को विवेक से काम लेना पड़ता है। यही चुनाव मनुष्य के जीवन की दशा और दिशा निर्धारित करती है कि उसका भविष्य कैसा होनेवाला है। आवश्यक नहीं कि आपके अभिभावक आपको हमेशा उचित निर्देश दें या हम यूं कह सकते हैं कि उनकी सलाह आपको हमेशा अच्छी लगे। आवश्यकता है अपने चारों ओर देखने ,परखने ,पहचानने और उपयुक्त चुनाव की ,जो हमें अच्छी पुस्तकों के माध्यम से ही मिल सकता है।
मैं अनुभव की बात कर रही थी , तो मेरा यह मानना है कि अपने जीवन का अनुभव जब तक हमें परिपक्व बनाएगा तब तक शायद हमारा तन ही न जवाब दे दे ,और हम अपने जीवन को यूं ही निरर्थक छोड़ इस दुनिया को अलविदा

कह दें। इसलिए आज ही आप अच्छी अच्छी पुस्तकों के माध्यम से लोगों के जीवन के अनुभव को पढ़े, उसे महसूस करें ,और फिर बेधड़क चल पड़ें अपने गंतव्य की ओर।

हार्दिक आभार आदरणीय डा० शेफालिका वर्मा दीदी का जिनके असीमित स्नेह की छाँव मेरे जीवन की सारी तपिश मिटाकर शीतलता प्रदान करती रहती है।
इनका मातृवत स्नेह एक सफल अभिभावक की तरह हमेशा मेरी उँगलियाँ थामे रखती हैं ।

मेरा हार्दिक आभार वरिष्ठ साहित्यकार आदरणीया मृदुला जी का जिन्होंने अपने गम्भीर लेखन का परिचय देते हुए इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे अपने आशीर्वाद से अनुगृहीत किया, साथ ही अनुवाद सम्बन्धी बहुत सारी जानकारियां भी मुझे मिली . अपनी भूमिका से मेरे अनुवाद में उन्होंने चार चाँद लगा दिये .

हार्दिक आभार दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो.डॉ राजीव वर्मा जी का जो स्वयं क्या और कौन हैं इसे भूलकर सामने वाले को इतना महत्वपूर्ण बना देते हैं कि यकीन करना कठिन हो जाता है और स्वतः ही ये आपको प्राणवायु से प्रतीत होने लगते हैं। उनकी प्रेरणा मुझे सतत मिलती रही .
आभार प्रकट करती हूँ जिज्ञासा प्रकाशन का , जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में हर सुविधा देने की कोशिश की ,जिनके कारण ये पुस्तक आपके हाथों में है . अपने परिवार को धन्यवाद कैसे दूँ – जिनकी प्रेरणा से मैं लेखन में धीरे धीरे अग्रसर होती रही .
आशा ही नहीं , विश्वास है कि गुणग्राहक आलोचक एवं पाठकगण इस अनुवाद को पढ़ेंगे , परखेंगे . अन्त में पुनह शेफालिका दीदी का आभार जिन्होंने मुझे इस योग्य समझा .
<u>कल्पना झा , दिल्ली</u>

शेफालिका मेरी दृष्टि में

पत्नी के रूप में समर्पिता , माता के रूप में ममतामयी , मित्र के रूप में अखण्ड विश्वासमयी एक विलक्षण व्यक्तित्व जिसमे अपूर्व आत्म संयम है , जिनको अध्ययन -मंथन में गंभीर रूचि है , जो सुरुचि सम्पन्न रहते भी सरल जीवन और उच्च विचार में आस्था रखती है। देश के प्रति अनुराग ,कला और संस्कृति , ,साहित्य-सम्पदा के प्रति प्रेम से भरा --इन सब को चरितार्थ करने वाली मेरी पत्नी शेफालिका--------

बाल्यकाल से ही अपने साहित्यकार पिता स्व ब्रजेश्वर मल्लिक की व्यक्तिगत एवं विशाल पुस्तकालय में शरतचंद्र , बंकिम चंद्र , टैगोर ,यशपाल आदि के साहित्य में रमन करनेवाली शेफाली सोलह वर्ष की उम्र में मेरी जीवन-संगिनी बन कर आयी . बालिका वधू का साहित्य के प्रति अपूर्व अनुराग देख कभी कभी मैं विचलित ही नहीं विक्षुब्ध भी हो जाता था , किन्तु धीरे धीरे मैंने उसके ह्रदय में लहराती हुई व्यथा विगलित भावनाओं का असीम महासागर देखा ---वो इतनी कोमल थी कि जूही की कली से उसे चोट लग जाये साथ ही दृढ इतनी कि संघर्षों के आंधी- तूफान भी उसे क्षत नहीं कर सकते और न कभी करेगा --ये है शेफालिका का व्यक्तित्व।

'यायावरी' में उसकी जीवन -यात्रा है , ये यात्रायें तो महज एक बहाना है , मै जानता हूँ जितनी यात्रायें उसने की है उससे ज्यादा ही उसका भावुक मन ' ' 'कोस के कोस , माइल के माइल' यात्रा करता रहा , इसमें कोई शक नहीं दोनों यात्राओं में मैं उसके साथ रहा। सच तो यह है कि यायावरी मात्र यात्रा वृतांत नहीं ,वरण उसकी आत्मकथा का खंड खंड चित्र है। शेफालिका संवेदनशीलता की साकार मूर्ति हैं। उसका क्रियाशील ह्रदय यांत्रिक प्रक्रिया का प्रदर्शन मात्र नहीं ,वरण स्वतः स्फूर्त प्रेरणा का मोहक निदर्शन है।

नारी के रूप में शेफालिका शक्तिस्वरूपा भी है जो महिषासुर रूपी दहेज़ दानव , नारी शोषण का प्रतीक और स्त्री को गर्त्त में रखने वाला रक्तबीज के वध का संकल्प लिये निर्भीक और सतत प्रयत्नशील रहती है। उसका क्रन्तिकारी ह्रदय शायद उसके जन्मदिन नौ अगस्त (शहीद दिवस) से प्रेरित है

एक तरफ प्रेम , करुणा ,दया और सहजता से ही पसीजने वाली शेफालिका एवं दूसरी ओर क्रन्तिकारी शेफालिका --दोनों व्यक्तित्वों की रस्साकस्सी में साहित्यधर्मी शेफालिका स्वयं एक अद्भुद व्यक्तित्व की स्वामिनी बन गयी है जिसे समझने में कभी कभी मैं स्वयं अक्षम हो जाता हूँ। साहित्य सृजन के लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता है , साहित्य उसके अंतर से इस तरह प्रवाहित होता है जैसे शिव के जटाजूट से गंगा लोक-कल्याणार्थ स्वतः प्रवाहित होती रहती है। धूप देखते ही जिस तरह हरसिंगार के फूल टूट टूट कर , क्षत - विक्षत उदास सा धरती पर गिर जाता है , अपने नाम को सार्थक करनेवाली शेफालिका जरा सी उपेक्षा से उदास हो जाती है , और यह उदासी उसके चेहरे पर तुरत परिलक्षित हो जाती है ,किन्तु , हरसिंगार के फूल की तरह धरती पर उपेक्षित होते भी अपनी सुरभि को नहीं भूल पाती है। दूसरे के घर की पीड़ा को अपने प्राणों की वेदना बनाना वह अपना धर्म समझती है। वास्तव में वह अखिल मातृत्व है। भावना के इस विपुल भंडार में खोकर भी कोई उसके अस्तित्व को नहीं पा सकता है , कितनी बार तो ऐसा होता है कि अपने परिवार , अपने बालबच्चों तक में खुद को अभिव्यक्त नहीं कर पाती है , कोई उसकी बातो से संतुष्ट नहीं हो पाता है तो वो एक निरीह दृष्टि से मेरी ओर देखती है ---और मैं उसकी बातों को , कहने के

आशय को स्पष्ट कर देता हूँ। और इसीलिए उसने कितनी जगहों पर मुझे अपना ' फ्रेंड ,फिलॉस्फर और गाइड' लिखा है।

प्रत्येक व्यक्ति को वह उसके अभ्यंतर में देखती है , वाह्य व्यक्तित्व को कनक - मृग की तरह भ्रामक मानती है . जीवन भर सबों के दु:ख को ओढ़ने वाली शेफालिका के हृदय को पहचानना आसान नहीं है

सत्य,श्रम और शिल्पमयी शेफालिका की सुरभि को पवन का एक झोंका बन अग जग सुवासित कर सकूँ तो स्वयं को धन्य समझूंगा।

ललन कुमार वर्मा , एडवोकेट , पटना हाईकोर्ट ,

1995

नक्षत्र निलय

नार्थ बिहार ट्रेन खुल चुकी थी , अमर बाबू अब भी हाथ हिला हमे विदाई दे रहे थे और देखते ही देखते आँखों से ओझल हो गये . 'गुड बॉय कोलकत्ता' – जय बाबू बोल उठे और मैं चौक उठी- विदा देते हाथ आँखों से ओझल हो चुके थे। मेरे अधर भी अस्फुट स्वर में कांप उठे- अलविदा कलकत्ता- याद आ गये कलकत्ता में बिताए पाँच दिन----

18 मार्च की सुबह, मिथिला एक्सप्रेस से कलकत्ता करीब 6 बजे पहुँची अपने देवर मोहन जी ,यानि जय के साथ . प्लेटफार्म की भीड़ में हम आशंकित हृदय और उत्सुक नयनों से अपनों को खोज रहे थे और नजरें अटक गई अमर बाबू पाहुन –अपनी छोटी बहन दीपमालिका की जीवन-मुस्कान पर . पलक-पंखुड़ियों में नींद की खुमारी अभी भी छायी हुई थी। मैं जान रही थी- समझ रही थी इतने सवेरे बिस्तर छोड़ने वाले तो ये हैं नहीं - अपने आप पर गुस्सा आये या, खुशी, यह सोचने का मौका भी न मिला . उन्होने मुझे खींच कर टैक्सी में बैठा लिया।

रास्ते भर इधर उधर की बातें होती रही। पटना से मेरी वापसी के बाद अचानक माँ की तबीयत खराब हो गयी थी । मेरे कलकत्ता पहुँचने का तार पाकर सभी घबड़ा गये थे। कोई उस तार को छूने का साहस नहीं कर पा रहा था . पता नहीं उस तार में माँ के विषय में कौन सी खबर होगी। मेरी छोटी बहन चयनिका की शादी हृदय से हुई थी यानी दीपमालिका की सबसे छोटी देवरानी बन गयी थी। फूल की तरह कोमल चयनी हृदयके संगीत में डूब गयी ,बारात विदा होने से पहले ही मैं पटना से सहरसा चली आयी थी। इसके बाद ज्ञात हुआ कि माँ बहुत ही अस्वस्थ हो गयी है..... इसलिए तार देखते ही सभी घबड़ा गये थें। अन्ततोगत्वा टुक्कू जी ने तार पढ़ा .... दीदी आ रही है.........

रवींद्र सारणी में राम भंडार के पास हमारी टैक्सी रूकी। दीपिया बहुत प्रेम से मिली ,मंजू-टुक्कू जी, विजया शम्भू जी सबो ने घेर लिया मुझे। दीपक की गृहस्थी पहली बार देखी थी मैंने . कलकत्ता के रविंद्र सारणी में पुश्तैनी एक छोटा सा कमरा, कमरे के चारो कोने, एक कोने में बेड़ रूम,एक कोने में ड्राइंग रूम,एक कोने में किचन, एक में बाथ रूम ,आल इन वन, किन्तु कितना साफ सुथरा दुल्हन की तरह सजा धजा ! पूजा करने के लिए मैं असमंजस में थी, कहाँ करूँ? अचानक दूसरे कमरे के अंदर लकड़ी के पार्टीशन से घिरा एक और कमरा देखा. वहीं दुर्गा जी का चित्र लगा था. मैं श्रद्धावनत हो गयी. ज्ञात हुआ ये शम्भू जी की कोठरी है। सारा दिन माँ की चर्चा होती रही, कलकत्ता आने का प्रयोजन, गंतव्य की चर्चा होती रही. पुर्वान्चालीय भाषाओँ का पांच दिनों का सम्मेलन था साहित्य अकादमी ,दिल्ली द्वारा आयोजित 'पोएट्स वर्कशॉप'

शाम में अमर बाबू के साथ टैक्सी से शेक्सपीयर सारणी पहुंची । भाषा परिषद के कार्यालय खोजने में कोई परेशानी नही हुई। कार्यालय में सुधेन्दु मुखोपाध्याय एवं डॉ प्रभाकर माचवे से भेंट हुई, हमलोगों का परिचय पा माचवे जी कहने लगे.. बंगाल में नए पुराने सभी लेखकों को समान प्रेरणा मिलती है, जिससे बंगला साहित्य आज भरा पूरा और समृद्ध है। मै मैथिली के लिए भी जानता हूँ कुछ व्यक्ति जो संस्कृत जानते हैं उन्होंने मैथिली में चार पांच पंक्तियाँ लिख अपना आधिपत्य जमा लिया है और किसी नए लेखक को पनपने नहीं देते--..मैं विस्मित हो गयी थी दूरवासी माचवे जी को उतर बिहार की भाषा मैथिली की इतनी जानकारी?

......मैं चुप रह गयी थी.........मुझे न तो ये सब बातें दिमाग में कभी आयी और न सोचने की भी फुरसत थी। चार बजे सुधेन्दु दा हमे कांफ्रेंस हॉल में ले गये। अन्य भाषाओँके कवि कुछ पहुँच रहे थे। अभी तक मैथिली में मैं

अकेली थी। तब तक एक और सुन्दर सी महिला सीधा पल्ला किये अपने बच्चे के साथ आयी। मैंने उसे देखते ही पूछा--आप क्या मैथिली से हैं?--- वह घबड़ाती बोली---देखिये न मैं पहली बार इस तरह के फंक्शन में आयी हूँ, मुझे पता ही नहीं इन सब में होता क्या है? हम दोनों बातें करते रहे, उसी क्रम में पता लगा वो अभी केवल लिखती ही हैं, प्रकाशित नहीं हुई है, वे मैथिली के मूर्धन्य विद्वान जयकान्त मिश्रा जी की बेटी थी लीला जी। तब तक वीरेंद्र मल्लिक, सुकान्त सोम सभी आ गये , मालूम हुआ उपेन्द्रनाथ व्यास जी और गोविन्द झा जी भी आने वाले हैं। कॉन्फ्रेंस शुरू हो गया …………मैथिली, मणिपुरी, आसामी, उड़िया और बंगाली कवि से सबों का परिचय सुधेन्दु दा ने कराया। इसी बीच एक और महिला आयी, वीरेंद्र जी ने हमारा परिचय कराया ये मैथिली की इला सिंह थी। पांचो भाषाओँ के कवि आपस में विचार-विमर्श करने लगे, कल किस विषय पर चर्चा होगी, अन्ततः, आज की कविता में छंद और मात्रा, हमने अपना समय यात्री जी से चुना। अब हमलोगों के सामने दो दो समोसे और एक रसगुल्ले का प्लेट आ गया।

हमारे आकर्षण का गठबंधन हुआ। एक तश्तरी ज्यादा थी, मैंने रसगुल्ले उठा सुकान्त जी को दे दिए। कॉफी का दौर आया - मेरी सबसे प्रिय चीज- पुनः एक कप कॉफी ज्यादा- आकर्षण उस फाजिल कप को अधरों से लगाने के लिए मचल मचल रहा था। पर ढेर सारी निगाहों को नजर अन्दाज कैसे कर जाती जिन्हें मैं झेल रही थी। अन्ततः एक उपाय सूझा। मैंने अपने ठीक सामने बैठी उड़िया कवयित्री प्रतिभा सत्पथी को देखा जो अपनी मोहक मुस्कान से मुझे जन्म-जन्म के संबंध का एहसास दिला रही थी- आधा कप मैंने अपने कप में डाली और आधा कप उसे लेने का आग्रह मैंने किया , पर वह एकदम नकार गई- मुझे कैसा तो लगा- क्या उस मोहक मुस्कान के पीछे संवेदनशील हृदय नहीं है। मैंने प्रतिभा जी के बगल में बैठे उड़िया के कवि राजेन्द्र किशोर पाँधा के आगे उस कप को बढ़ा दिया- उन्होंने हँस कर स्वीकार किया।

अब हम स्टेडियम की ओर चले, हम मैथिली ग्रुप एक जगह बैठे। मेरे ठीक पीछे डॉ0 प्रभाकर माचवे जी शायद अपनी पत्नी के साथ बैठे थे। सामने मंच पर उमाकांत जोशी जी के साथ महाश्वेता देवी साहित्य एकेडेमी पुरस्कार विजयिनी बंगला लेखिका बैठी थी। साथ ही बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक नरेन्द्र नाथ चक्रवर्ती भी बैठे थे। महाश्वेता जी कुछ कारणों से दिल्ली पुरस्कार लेने नहीं जा सकी थी । इस कारण यह पुरस्कार उन्हें यहीं मिलना था। उमाकान्त जोशी जी ने अपना अभिभाषण देकर उन्हें पुरस्कार प्रदान किया। फिर महाश्वेता जी का बड़ा ही ओजपूर्ण वक्तव्य रहा- मर्द समाज को उघेड़ कर उन्होंने रख दिया और देश प्रेम की भावना को सुदृढ़ करने पर उन्होंने बल दिया कि हम बंगाली है तो क्या बिहार के चासनाला कांड पर हम नहीं लिख सकते? पारस बीघा की घटना हमें प्रभावित नहीं करती।

मेरे पीछे बैठे माचवे जी मेरा परिचय अपनी पत्नी से कह रहे थे , अपने आस पास के लोगों से भी, मैं चौंक गयी, मेरा ग्रुप भी चौंक गया।

अब उमाकान्त जोशी ने पाँचों भाषाओं के कवियों की कर्मशाला पोएट्स वर्कशाप का उद्घाटन किया।

पुनः रवीन्द्र संगीत का अनुवाद पाँचों भाषा में सुनाया गया। मैंने जोशी जी को अपना काव्य संग्रह 'विप्रलब्धा' भेंट की। उन्होंने मुझे आशीर्वादों से नहला दिया।

1 बजे रात्रि में हम वापस घर लौटे। दीपक रसोई बना हमारी प्रतीक्ष में थी। बहुत देर तक हँसी मजाक चलता रहा। नींद भी पलकों पर बैठी थी। पलंग पर दीपक पाहून और सोफे कम बेड पर मैं , सोनी और बॉबी , तीनो साथ ही

सोये। किन्तु, नींद कहाँ आँखों में, नयी जगह, नया परिवेश। मन उड़ कर बच्चों कें पास चला जाता था........ कार्यशाला से लौटते वक्त एक ही टैक्सी में अमर बाबू और जय के साथ वीरेंद्र मल्लिक, सुकान्त सोम भी थे। रास्ते में अमर बाबू ने परिहास से कहा.... हां तो दीदी , आज वर्कशॉप में क्या क्या प्रोड्यूस हुआ, मै साढ़ू भाई को सहरसा लिखूंगा, हंसी का फव्वारा छूटा। सोते में भी याद कर हंसी आ गयी।

अगले दिन सबेरे उठी तो दीपक हीटर पर चाय चढा बिछावन पर सोयी थी। हँसी आ गयी- कितना काम करती है समष्टि के लिए व्यष्टि का समर्पण नारी की शक्ति अभोघ है। मैं अधखुली आँखों से अपनी छोटी बहन को देख रही हूँ , पानी खौल गया - यह एहसास उसे पता नहीं कैसे चल जाता है- वह धडफड़ा कर उठ बैठती है- चाय बना मेरे पैरों को हिलाती है- दीदी चाय पीलो- मैं तुरंत उठने का अभिनय कर उठ बैठती हूँ।

पंखा चल रहा है किन्तु कितनी उमस कलकत्ते कें वातावरण में ! शंभु जी आते हैं- गुड मार्निंग दीदी कह चाय पीने लगते है। नहा धोकर दुर्गा पाठ करने बैठती हूँ। पाठ करने में पता नहीं क्यों मन नहीं लग रहा था।शंभु जी ने पूजा के लिए कमरे की सफाई कर दी-थी। मन को एकाग्र करने की की कोशिश करने लगी। सुकान्त सोम जी पास ही रहते थे। उन्हें साथ ही चलने के लिए कहा था मैं ने।

सुकान्त जी आये और मैं तैयार हो उनके साथ कर्मशाला के लिए विदा हुई। सुकान्त जी ने 8बी बस से जाने के लिए कहा। अमर बाबू ने जय से कहा तुम भी चले जाओ- 8 बी बस में एक उतरता है तो दूसरा छूट जाता है। बेमन से वे तैयार हुए। 8बी में मुझे तो बैठने की जगह मिल गई पर वे दोनों खड़े रहे। सियालदह स्टेशन आते आते बस की भीड़ जानलेवा हो गयी। मेरी देह पर कितने स्त्री पुरूष झुके थे कि मैं अन्दर देखती तो घुटन से ही मूर्छित हो जाती। खिड़की से बाहर देखती रही- कैसे रहते हैं लोग यहाँ- कवीन्द्र रवीन्द्र का कलकत्ता - शरतचन्द्र का कलकत्ता- शंकर का कलकत्ता- विमल मित्र का कलकत्ता। मैं एक दिन इस बस में जा रही हूँ तो दम घुट रहा है पर जिन की दिनचर्या ही यही है। कौन मर्द है कौन औरत यह देखने की फुर्सत भी किसे? सभी अपनी अपनी धुन में, अपनी रौ में बेगवती जलधारा की तरह बहे जा रहे हैं। जिधर देखती हूँ आदमी ही आदमी हैं- आदमियों का जंगल- कोई अजनबी जाये तो खो जाए- और मैं डर गयी मृग शावक की तरह कहीं खो न जाऊँ इस जंगल में- आदमियों के जंगल में- अपना स्टोपेज आता है- सुकान्त जो मुझे खींचते से बाहर निकल पड़ते हैं- एकबारगी कलकत्ते की हवा सारे बदन में लिपट जाती है। हम तेज कदमों से अपने गंतव्य की ओर बढ़ते हैं।

कॉन्फरेन्स हॉल में आज सुधेन्दु दा ने सारे ग्रुप को अलग अलग बाँट दिया। मैथिली ग्रुप कॉन्फरेन्स हॉल में ही रहा। उड़िया के कवि सीताकान्त महापात्र सिर्फ एक ही दिन के लिए आ पाये और अपनी उन्मुक्त हँसी से सारे वातावण को उल्लसित कर गये। वीरेन्द्र मल्लिक जी छन्द और मात्रा पर लिखकर ले आये थे। हम सब उसी पर बहस करते रहे। मन लेकिन लग नहीं रहा था। कहाँ तो व्यास जी, गोबिन्द जी के आने की बात थी पर- फिर बातें होती रही- रचना- प्रक्रिया पर बात चली तो मैंने अपने कुछ अनुभव सुनाए- किस तरह सत्यनारायण भगवान की पूजा के समय मैंने अपनी कविता लिखी- '--मेरे मन के कोमल वृन्तों से –' किस तरह गाँव में नाव पर घूमते घूमते '--अपराध हमर माफ करब –' का सृजन हुआ- मातृत्व की पीड़ा और सृजन का आंनन्द माता ही जानती है। कविता के जन्म के समय जितनी विकलता और छटपटाहट रहती है जन्म के पश्चात उतनी ही शांति उतनी ही तृप्ति रहती। आकार देने के बाद जिस तरह माता शिशु के रूप को सँवारने के लिए उसके माथे को धीमी थपकियों से सहलाती है तो कभी उस की नासिका को हौली उंगलियों से दुलारती है- ठीक यही हाल कवियों का है जो वह स्वयं भोगता है-

कॉफी और पानी - शीत और ताप - शिशिर और ग्रीष्म के बीच हमारा पहला सेशन खत्म हुआ और हमें लंच के लिए ऊपर के फ्लोर पर बुलाया गया।

सभी ग्रुप ऊपर आ चुके थे। हमारे हाथ में एक बड़ा डब्बा थमाया गया और एक चमचा - खाना स्तर का था और भूख भी अपने स्तर पर थी। डब्बा सम्भालूँ कि खाना खाऊँ - हँसते रहे - सब घूम घूम कर खाना खा रहे थे - मैंने वीरेन्द्र जी से कहा ''आप के खाना खिलाने का ढंग कलकत्ता मे देख लिया''- - सहरसा जाऊँगा तो कैसे खिलाएगा'' मैंने छूटते ही कहा - थाली में सारी चीजें सजी रहेगीं और हृदय के साथ आप के आगे रखूगीं- औपचारिकता के साथ नहीं-- लीला ने कहा एक ही तो हृदय है किसको किसको देगीं- गलत समझी लीला स्त्री के पास हृदय छोड़ है ही क्या जिसमें स्नेह ममता प्यार वात्सल्य भरा रहता है परोसने के लिए लुटाने के लिए- सभी अभिभूत हो गए- हृदय तो प्यार भरा सागर है- उससे जितना भी दो खाली नहीं होता, देने में जो आनन्द है वह पाने में नहीं-

दूसरे सेशन में हम पाँचों ग्रुप साथ ही बैठे। उड़िया ग्रुप ने अपना लिखा हुआ कविता का इतिहास सुनाया अंग्रेजी में ही। फिर बंगला ग्रुप ने भी। कुछ देर तक बहस होती रही। हम एक दूसरे की कविता को पहचानते रहे। सुधेंदु दा ने कहा- अब आप अपने ग्रुप को छोड़कर एक दूसरे के ग्रुप में मिलकर बैंठें। मेरे बगल में उड़िया के हर प्रसाद पटनायक जी आकर बैठ गये परिचय हुआ- वे गोमजाम में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। बड़े हँसमुख- विनोदी स्वभाव। एक दूसरे की कविताओं पर हम बातें करते रहे। भाषाओं की संस्कृति और संस्कार का ताना बाना हम बुनते

फिर नाश्ते और कॉफी का दौर आया और कॉफी की मिठास से मन भरने लगा।

तीन बजे जय को आने कहा था, बातें कर रही थी, पर मन में आशंका थी जय नहीं आये तो फिर, इस आदमी के जंगल में मैं क्या करूँगी। ...कहीं खो न जांऊ, तब तक जय पहुँच गये।

सुधेन्दु दा से आज्ञा ले मैं बाहर आयी.... बाहर प्रतिभा सत्पथी ने मुझे रोक लिया......दो मिनट मेरे पास बैठिये---उस दिन का कॉफी अस्वीकार करना मै भूली नहीं थी फिर भी बैठ गयी। वहीँ साहित्य अकादमी के अकांउटेंट ओमप्रकाश जी से भी बड़ी देर तक बातें होती रही.......... साहित्य अकादमी की गली गली को पहचानती रही। कलकत्ता कार्यशाला के फूल पान वहीँ हमे ओमप्रकाश जी ने दे दिए

प्रतिभा से भी बड़ी देर तक बातें हुई। जय के साथ टैक्सी से रविंद्र सारणी चली आयी। जय ने दिन में खाना भी खाया, मेरे कारण सारा दिन शेक्सपीयर सारणी का चक्कर लगते रहे थे, इधर मेरे कारण अमर बाबू अपना काम धाम छोड़ बैठे थे, हरदम बोलते-- दीदी के लिए कोई फॉर्मेलिटी नहीं, जैसे हमलोग हैं, वैसं दीदी भी है—

लेकिन रोज रोज मछली, मांस कुछ न कुछ विशेष रहता ही।

हमलोग तैयार होकर सुनन्दा मौसी के यहाँ, महात्मा गांधी लेन गये। वहां माँ का समाचार मिला- हम सब पेट भर नाश्ता , मन भर हँसी मजाक कर वापस आ गये। , मैंने दीपू से काहा-अब रात का खाना बन्द। शम्भू जी ने कहा दीदी चलिये आपको मैं शरबत पिलाता हूँ, बहुत थकी लग रही हैं आप.......... दीपक के घर की तीन मंजिले की सीढ़ी बारबार चढ़ना उतरना मेरे लिये दुष्कर हो रहा था, पर मैं शम्भु जी के प्यार भरे आग्रह को टाल न सकी। रूक्का और सोनी के साथ मैं शरबत हाउस गयी। पहले गुलाब का शरबत फिर, केवड़े का- शम्भु जी की जिद , वाकई मन तरोताजा हो गया, उन्होंने कहा जयप्रकाश नारायण यही शरबत पीया करते थे तो उनके अस्तित्व की अनुभूति से आनन्द आ

गया।, विचित्र प्रकृति है शम्भू जी की.... मैंने उनसे पूछा क्या करते हैं आप ? दीदी ,जुआरी हूँ----उनके कहने के अंदाज पर हम सब भभा कर हंस पड़े।

दूसरे दिन भाषा परिषद कार्यालय जाते वक्त मैंने सुकान्त जी से स्पष्ट कह दिया मैं 8वीं बस से नहीं जाऊँगी। रवीन्द्र सारणी से शेक्सपीयर तक का लम्बा सफर था जिसे कर्मशाला की तरह ही दो सेशनों में झेलना था। एक सेशन रवीन्द्र सारणी से एसप्लेनेड, दूसरा सेशन एसप्लेनेड से प्लेनेटेरियम। हम ट्राम से विदा हुए। रास्ते भर हम दोनों घर गृहस्थी की बातें करते रहे। आर्थिक संबंध कैसे बनते बिगड़ते है, रूपयों पैसों के तराजू पर सारे रिश्ते नाते तोले जाते है- सारे संबंधों की जड़ अर्थ है जो अनर्थ ही तो करता है। एसप्लेनेड पहुँचने पर हमें ट्राम बदलनी थी। हम आपस में बात कर ही रहे थे कि प्लेनेटेरियम वाली ट्राम किधर लगेगी, कंडक्टर पास ही खड़ा था , वह मैथिली में हमें बताने लगा - मैं एकदम चौंक गई - अरे इस विदेश में देशी बोली - तबीयत खुश हो गई-अपनी मैथिली सुन ---

कान्फरेन्स हॉल पहुँचने पर भी हम दो ही थे। मैं ओम प्रकाश जी साहित्य एकेडेमी के एकाउन्टेन्ट से बातें करने लगी। उन्होंने बहुत बातें मुझे सुझायी तब तक हमारा ग्रुप आ गया- ओम प्रकाश जी चले गये- आज बहस का विषय था समकालीन कविता’ -बहस चलती रही प्वाइंटस बनते रहे।मल्लिक जी ने मुझसे पूछा आप भी कुछ बताइए मैंने हँस कर कहा- मल्लिक जी हम आप आलोचना करने वाले कौन होते हैं ! किसी भी कृति की आलोचना समय करता है, वक्त करता है - फिर मैंने गम्भीर होकर कहा कुछ व्यक्तियों को लेकर हम पूर्वाग्रह से ग्रसित रहते हैं अतः जब हम आलोचना करें तो उस व्यक्ति को भूल जायें और उसकी रचना हमारे समक्ष रहे। हम रचना की आलोचना करेगें न कि व्यक्तित्व की। आलोचना स्वस्थ होनी चाहिए। -

लंच का समय हो गया - फिर वही पैकेट - आज पुलाव के साथ् मछली भी थी पर मेरा मन खाने मे नहीं लग रहा था-

मैं तो अभी आलोचना का रंग ढ़ग सीख ही रही हूँ और मेरी स्मृति में विद्युत् सी चमक जाती है प्रो शेखर की बातें --मैं आपसे संबंधित रचनाओं पर शोध कर रहा हूँ, मेरे पास नौ प्रश्न हैं, कृप्या उनका उत्तर मुझे तुरत भेज दें, जिसमे एक प्रश्न था ---आपकी तुलना मैथिली साहित्य में महादेवी वर्मा से की जाती है, और महादेवी वर्मा के जीवन से हम सब परिचित हैं....... आपकी क्या राय है ??

और पल भर के लिए मैं अकचका गयी, फिर मन खिन्न हो उठा मैं एकदम से उदास हो उठी..... किन्तु, वर्मा जी मेरे आगे आगे सतत प्रकाश लेकर चलते रहे हैं-- इस प्रश्न से तुम उदास क्यों हो गयी? इसका तो बहुत सिम्पल उत्तर है. मैं समझती हूँ लोग मेरी रचनाओं की तुलना महादेवी से करते हैं, न कि मेरे जीवन की-- और मेरे सामने एक आलोकमय पथ जैसे ज्योतित हो उठा था आज फिर वही स्थिति --

क्या सोचने लगीं आप?--वीरेंद्र जी का स्वर सुनते ही मेरा मन यथार्थता की भावभूमि से टकरा गया . सबों की पुस्तकों पर विचार करते करते अब मेरी पुस्तक आ गयी ‘विप्रलब्धा ‘ सभी अकचका गये, जैसे कोई अनहोनी सी बात हो गयी। सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। अभी तक वे लोग सभी कवि कवयित्रियों पर मुक्त रूप से चर्चा कर रहे थे, खुद अपनी पुस्तकों पर भी। लेकिन ठीक मेरी पुस्तक सामने आते ही......

उस समय मैं स्वयं अपनी ही दृष्टि में अनजानी हो गयी; विचित्र जिन्दगी लोग जीते हैं, बाहर कुछ , भीतर कुछ -- मेरा तो जैसे दम घुटने लगा, दो व्यक्तियों के साथ मैं बहुत ही सहज ढंग से रहती हूँ, अपनी उन्मुक्त हँसी के साथ, किन्तु जैसे चार पांच व्यक्तियों के साथ होती हूँ, भीड़ के बीच मै अकेली हो जाती हूँ--नितान्त अकेली. कोई समझ पायेगा

मेरी इस स्थिति को कभी ?प्रत्येक मानव अपने ही हृदय से दूसरे को देखता है; अपने मन के बटखरे से ही दूसरों को भी तौलता है, क्या किसी ने मेरे मन को जाना? बच्चन ने ये कविता शायद मेरे लिये ही लिखी हो--

मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता

शत्रु आज बन गया, छलरहित व्यवहार मेरा........

अचानक इला जी के सवाल ने मुझे झकझोर दिया –आप अपनी कविताओं को किस ' वाद ' में समझती हैं –और मैं सोचने लगी –मैंने अपने हृदय को विप्रलब्धा में किस वाद में बांध कर रखा है –प्रगतिवाद , प्रयोगवाद ,छायावाद -?? मै तो केवल लिखना जानती हूँ –वह भी अपने आप को हल्का करने के लिए –लिखने के बाद लगता है जैसे प्रसव-पीड़ा से मुक्ति पा गयी –एक लम्बी सांस छाती से चैन की , शान्ति की निकल वातावरण में फ़ैल , तन-मन को सुकून पहुंचा जाती है .फिर मैं अपने ही लिखे का पोस्टमोरटम खुद ही कैसे करूँ ! मैं तटस्थ हो गयी , निरपेक्ष रह गयी . मैं सब दिनों के लिए तटस्थ ही रह गयी . ईश्वर से सिर्फ इतनी ही प्रार्थना करती रही कि मैं किसी की सांत्वना की पात्रा बनूं .इससे अच्छा मुझे किसी को सांत्वना देने योग्य बना दें ..

इला जी, सोम जी आदि सब एक दूसरे का चेहरा देखने लगे , उनलोगों का असमंजस देख कुछ क्षणों के लिये मैं स्तब्ध रह गयी , कुछ देर में मैं वहां से उठ उड़िया कवयित्री प्रतिभा सत्पथी के पास चली गयी , दस मिनट बाद लौटी तो वे विप्रलब्धा को लांघते आगे बढ़ चुके थे . मन भीतर से बहुत ही उदास हो गया था , पर उपर से सहज और शांत थी जो मेरी आदत है हृदय के अन्तर्द्वन्द्व को जल्दी किसी को पता नही चलने देती . अंतर के ज्वार को हृदय में छुपाये , अरस्तू , प्लेटो आदि के आलोचना सिद्धांत याद आ रहे थे –वास्तव में किस भी कविता को समझने के लिए तर्क-वितर्क , संशय-असंशय भरी लेखनी नहीं , कवि हृदय की सहृदयता , सह संवेद्यता रहनी चाहिये जिससे किसी रचना की आत्मा तक पहुंच उसके गुण-अवगुण को उजागर कर सके .

लंच का समय हो गया , कृपया आप सब उपर आ जायें –किसी ने कहा और हमारा सारा ग्रुप उठ लंच के लिये चल दिया . –फिर वही पैकेट किन्तु , आज पुलाव के साथ मछली भी थी . किन्तु मेरा मन तो बसंत की पछवा हवा की तरह सांय सांय करते उदास होता चला जा रहा था .

खाने के बाद नीचे के हॉल में हम फिर इक्टठे हुए। मेरे बगल में बंगला कवि भास्कर चक्रवर्ती आकर बैठ गये। किसी ने हम सबों के पास ऐश ट्रे रख दिया। सामने बैठी इला जी ने कहा - यहाँ ऐश ट्रे की क्या जरूरत है। मैंने कहा- इला जी यह ऐश ट्रे हमारी जिन्दगी की तरह है जिसमें हमारी तमाम इच्छाओं की राख रखी जाती है। इसकी सही जगह यही है। भास्कर जी बोल उठे- हमारे एक दोस्त ने लिखा है- ''मैं ऐश ट्रे की तरह टेबुल टेबुल घूमता रहा- मैंने अपनी एक हिन्दी कविता की दो पंक्तियाँ सुनायी---' अपना जलता सिसकता दिल याद आ जाता है, जब तुम्हारे होठों से लगी सिगरेट मैं देखती हूँ , तुमने सिगरेट नहीं जैसे मेरे दिल को ----'

भास्कर जी वाह वाह कर उठे। कुछ ही पलों बाद भास्कर जी सिगरेट जलाकर पीने लगे- अब तो धुएँ की गंध से मेरा बुरा हाल। मैंने कहा- माफ करें भास्कर जी मैं सिगरेट पर कविता लिख सकती हूँ पर सिगरेट सहन नहीं कर सकती हूँ। उन्होने तत्काल माफी माँग कर सिगरेट बुझा दी।

नरेन्द्र नाथ जी हमें कविता की गतिविधियाँ बंगला में समझा रहे थे। हमारा हृदय उनके रसभरे कवितपूर्ण वक्तव्य से आह्लादित हो रहा था- उड़िया के कवि अश्विनी जी ने उनसे कुछ प्रश्न पूछे, कुछ कवि नवकांत बरूआ जी ने पूछे। मेरे मन में भी कुछ प्रश्न उमड़े मगर मैं स्वयं ही कहीं खो गई थी। अतः ऐसी स्थिति में न पूछना ही बेहतर था। बस उन सबों को आत्मसात किए जा रही थी।

हरप्रसाद जी ने ‘वोरटैक्स‘ पत्रिका मुझे दी। मैंने बोरटेक्स का अर्थ पूछा, राजेन्द्र जी ने कहा - नदी में जो गोल गोल - उन्हानें इशारा से समझाया - मैंने कहा भँवर - यस यस - उन्होंने कहा ‘‘मैंने मुस्कराते हुए कहा ओह - क्वाइट डेंजरस - डूब जाओ तो निकलो नहीं।

4 बज चुके थे। मुझे ले जाने के लिए जय पहुँच गये थे। वीरेन्द्र जी ने कहा - समय हुआ नहीं कि आप बच्चों की तरह बस्ता समेटने लगती है। मैं मुस्कुरा दी - बाबू सिंह ने कहा किधर-? मैंने बाहर की ओर इशारा किया – उधर ----

इला जी किसी से कह रही थी- शेफालिका जी इतना हँसती है,............हँसने की बात मेरे कानों में पड़ी , आँखों में गंगेश गुँजन जी की छवि काँप उठी........ जब वे पटना अकाशवणी में थें मेरा कविता-पाठ का कार्यक्रम था।..... उन्होंने मुझसे पूछा आप इतना हँसती रहती हैं ,पर, कविता में वेदनामयी क्यों हैं..!-- मै हंसती हुई वहां चली आयी थी। गुँजन जी के प्रश्न के साये में मैंनं घर आकर कविता लिखी थी..—

मेरी हँसी

तुमने सुनी अविकल निर्झर

झरती झर झर ----

कहाँ मिलेगी इस यांत्रिक युग में

चहकती चुहकती प्राकृत हंसी

--अधर भी बन गये आज मशीन

किस क्षण ,कौन कांटा इधर उधर जाये

कुछ सिकुड़े कुछ सकुचाये

तभी बनती एक हँसी / जिसे कहते फॉर्मेलिटी

आज के युग में मलिन वसना / गंधी गंधाती आती घर ‘नौड़ी ‘

इसी तरह तो होठों पर नाचती बासी – तेबासी हँसी ‘ छौंड़ी ‘

21.03.80 सुबह उठते ही सर भारी लग रहा था। तबीयत ठीक नहीं लग रही थी। मैं सुकान्त जी के साथ रोज की तरह कर्मशाला के लिए विदा हो गयी। बदन टूट रहा था मेरा। कलकत्ते की उमस से जी घबड़ा गया था। चारों ओर की भीड़ हर वक्त लीलने का आभास दिलाती रहती। मैंने सुकान्त जी से टैक्सी के लिए कहा - देर हो गयी थी, तबीयत ठीक नहीं थी। अपना सहरसा याद आ रहा था जहाँ अपनी पहचान थी, अपना अस्तित्व था - चैन था - शांति थी ,मेरे चारो बच्चे पिंकी ,लिली , गुड्डू ,गुड्डी –अपने पापा के साथ घर तो भरा पर एक खालीपन का एहसास मुझे यहीं से हो रहा था -––राजू , सुकू भी पटना ---

टैक्सी पर भी सुकान्त जी के साथ कविता होती रही। एक बगल टैक्सी में घूप आ रही थी, एक बगल छाँव। मेरे बगल जब धूप आ जाती तो सुकान्त जी खिसक जाते फिर मैं छाँव में आ जाती। टैक्सी मुड़ती धूप सुकान्त जी के पास आती , मैं खिसक जाती वे छाँव में आ जाते - हँसी आती रही मैंने कहा - सुकान्त जी यही जिन्दगी है - धूप और छाँव - सुख और दुःख - अचानक सुकान्त जी ने कहा - खिसकिये खिसकिये आप की तरफ बड़ी देर से धूप हैं। खिसकती हुई मैं हँस पड़ी --कभी कभी ऐसा भी होता है कि मानव दुःख पकड़ने का इतना अभ्यस्त हो जाता है - सुख के क्षण आते भी हैं तो वह समझ नहीं पाता।

धूप छाँव के बीच कार्यालय आ गया। सुकान्त जी के मना करने पर भी बिल मैंने ही चुकाया - नहीं सबदिन तो आप ही चुकाते हैं - आज मैं ही। कॉन्फरेन्स हॉल पहुँचने पर देखा अभी तक कोई नहीं पहुँचा। गुस्सा भी आया। पर धीरे धीरे सभी पहुँचे और अपने अपने ग्रुप में बैठ कर विभिन्न हॉलो में चले गये। इलाजी समकालीन कविता पर लिख कर लायी थी अँग्रेजी में। कैसा तो लगा - हमने पहले ही दिन कहा था हम सभी अपनी भाषाओं में ही लिख कर लायेगें जिससे हम एक दूसरे की भाषा नहीं समझते और समझने का आनन्द लेंगे। फिर सम्पर्क भाषा में उसका विश्लेषण किया जायेगा - पर हुआ कुछ नहीं - हम कमजोर कहाँ पड़ रहे थे - हमें जोड़ने वाली भाषा या तो बंगाली थी या अंग्रेजी। राष्ट्रभाषा हिन्दी निर्वासित सीता की तरह अरण्य रोदन कर रही थी जिसकी अस्पष्ट ध्वनि कभी-कभी वातावरण में फैल जाती। मैं विवश थी, मेरे सारे साथी विवश थे, पर यह विवशता कौन थी जो सबों के हृदय में सरस्वती की तरह प्रावाहित हो रही थी। एक भय एक संकोच की धारा अंग्रेजी की उदधि में हिलोरे ले रही थी। पता नहीं कौन समझा पाये कौन नहीं? मानव क्या कभी अपनी विवशताएँ हटा पाएगा? परंपरा का निर्माता होकर भी मानव आखिर कब तक परंपरा का शिकार होता रहेगा? और यह परम्परा भी कैसी जो विवशता को जन्म दे। सभी लेखक, सभी कवि एक ही भावनाओं का साम्राज्य ले इस वर्कशाप में आये। आँचलिक भाषाएँ पाँच थी पर सम्पर्क भाषा विदेशी ही क्यों रही हम सभी कमजोर क्यों पड़ रहे थे?

सम्पर्क भाषा विदेशी ही क्यों. समकालीन कविता पर चर्चा होती रही, मैं मौन मूक मैथिली आलोचना का जन्म देख रही थी। इला जी, सुकान्त जी , वीरेंद्र जी सबों की कविताओं के उ़द्धरण थे, किन्तु अन्य नामों के साथ मेरा भी एक नाम कलम से टघरे स्याही की एक बून्द की तरह।.—मुझसे रहा नहीं गया –इला जी कवियों की तरह अपने यहाँ कवयित्रियों की संख्या भी कम नहीं है – शान्ति सुमन , नीरजा रेणु , सुभद्रा सिंह पाध्या आदि आदि सब छूट गये----इला जी माफी मांगती –गलती से छूट गयी और सबों का नाम जोड़ने लगी मैं मन नही मन सोचने लगी आखिर मैथिली आलोचना का ये ठकुरसुहाती रूप कैसे बना , क्यो बना.....

लंच के समय सारे ग्रुप एक हुए। हाथों में पैकेट और चम्मच थामे एक दूसरे से बातें करते खाना खा रहे थे। हर प्रसाद जी ने अपने डिब्बे से एक मिठाई मेरे पैकेट में और एक राजेन्द्र जी के पैकेट में डाली। आज अंतिम लंच था हमारा। मैंने अपनी मिठाई राजेन्द्र जी के डिब्बे में और राजेन्द्र जी ने अपनी मिठाई मुझे दी। बाबू सिंह ने बुलाया – विप्रलब्धा आपने लिखी है। मैं उसको पढ़कर समझ गया। हर प्रसाद जी ने कहा विप्रलब्धा उड़िया शब्द है। इसका अर्थ सेपरेटेड वुमेन हुआ।

नवकान्त बरूआ आ गये - आप का विप्रलब्धा मैं कुछ कुछ समझ गया। मैं सबों से मैथिली में बातें करने लगी। सब टूटी फूटी मैथिली बोलने लगे। राजेन्द्र जी ने पूछा- आप के हंसबैंड क्या करते है तो मैंने कहा पब्लिक प्रोसीक्यूटर है-- वे बोले- यू मीन- पी.पी.।

आज कर्मशाला का अंतिम दिन था। कल तो शाम में सिर्फ कवि सम्मेलन ही होना था। बाबू सिंह ने कहा मैं आप के पास बैठना चाहता हूँ- मैंने कहा- अवश्य-फिर वे मेरी कविता पढ़ मुझे सुनाने लगे। अर्थ भी बताने लगे- मणिपुरी कवि के मुँह से अपनी मैथिली कविता अर्थ सहित सुन मन क्यों न नन्हीं चिड़िये की तरह नाचेगा?

आज का यह अंतिम सेशन सबों का हृदय भरा हुआ था मैथिली आसामी के लेख पढ़े जा रहे थे पर मैं अपनी ही कविता में डूबी थी............

पाँच भाषाओं का संगम पर आत्मा एक , भाव एक ---चेहरे एक दूसरे के लिए अनजाने ......

हृदय कितने करीब / कितने करीब –जैसे एक दूसरे के अंश हों / लेकिन भाषायें ---

मैं अपनी भावनाओं में डूबी समझ नहीं पा रही थी कि बगल में बैठे बाबू सिंह मेरी कविता पढ़े चले जा रहे हैं -

सुधेन्दु दा ने कहा - अब आप लोग आपस में मिलकर बैठे। राजेन्द्र जी मेरे पास दौड़े आये। वीरेन्द्र जी, इला जी भी मुझे घेर कर बैठ गये। सबों का आग्रह था कि मैं कविता सुनाऊँ। पर मैं नकार गयी। बाबू सिंह ने कहा - सी इज ए रियल पोएटस - ये आशु कवि हैं। अभी मेरे सामने इन्होने अपनी कविता लिखी- शेफाली जी! हूँ इन्सपायर्स यू फार दीज राइटिंगस- मेरे कहने से पहले ही वीरेन्द्र जी कह उठे- ओनली हर हसबैंड- वे चौंक उठे - इज इट टू: मैंने हँसते हुए कहा हन्ड्रेड परसेन्ट टू ,यू आर लकी। बाबू सिंह की नजरे मेरे चेहरे पर भाग्य के निशान खोज रही थीं। हर प्रसाद जी उड़िया लोकगीत गाने लगे। पांचों भाषाओं की उँगलियाँ टेबल पर थाप दे रही थी। सोम जी धीरे से बोल उठे आप के सरदार जी आ गये। मैंने देखा जय के साथ अमर बाबू - मैंने उन दोनों को अन्दर ही बुलाया क्योंकि इस घेरे से निकलने के मुझे आसार नज़र नहीं आ रहे थे

यूँ लगता था भावना के स्तर पर हम एक हैं। भाषा की दीवार हमें अलग किये है। अब उड़िया कवि अश्विनी जी गा रहे थे। ‘‘तुमकु देखिबा माने सात पूर्वजन्म आउूं सात पट जन्म एक संगे निभायबा‘‘- पाँचों भाषाओं के ताल पड़ रहे थे। फिर मुझसे आग्रह हुआ। मैंने कहा - मैं सिर्फ रोना जानती हूँ गाना नहीं। लीला ने विद्यापति गाना गाया

नवकान्त बरूआ आ गये - आप का विप्रलब्ध में कुछ कुछ समझ गया। मैं सबों से मैथिली में बातें करने लगी। सब टूटी फूटी मैथिली बोलने लगे। राजेन्द्र जी ने पूछा- आप के हंसबैंड क्या करते है तो मैंने कहा पब्लिक प्रोसीक्यूटर है वे बोले- यू मीन- पी.पी.।

आज कर्मशाला का अंतिम दिन था। कल तो शाम में सिर्फ कवि सम्मेलन ही होना था। बाबू सिंह ने कहा मैं आप के पास बैठना चाहता हूँ- मैंने कहा- अवश्य-फिर वे मेरी कविता पढ़ मुझे सुनाने लगे। अर्थ भी बताने लगे- मणिपुरी कवि के मुँह से अपनी मैथिली कविता अर्थ सहित सुन मन क्यों न नन्हीं चिड़िये की तरह नाचेगा?

आज का यह अंतिम सेशन सबों का हृदय भरा हुआ था मैथिली आसामी के लेख पढ़े जा रहे थे पर मैं अपनी ही कविता में डूबी थी............

पाँच भाषाओं का संगम पर आत्मा एक-चेहरे पर एक दूसरे के लिए अनजाने ......

हृदय कितने करीब हैं मैं अपनी भावनाओं में डूबी समझ नहीं पा रही थी कि बगल में बैटे बाबू सिंह मेरी कविता पढ़े चले जा रहे हैं -

सुधेन्दु दा ने कहा - अब आप लोग आपस में मिलकर बैठे। राजेन्द्र जी मेरे पास दौड़े आये।वे आईएस अफसर थे और भुवनेश्वर में जॉइंट सेक्रेट्री रेवेनुए थे

वीरेन्द्र जी, इला जी मुझे घेर कर बैठ गये। सबों का आग्रह था कि मैं कविता सुनाऊँ। पर मैं नकार गयी। बाबू सिंह ने कहा - सी इज ए रियल पोएटस - ये आशु कवि हैं। अभी मेरे सामने इन्हांेने अपनी कविता लिखी- शेफाली जी! हूँ इन्सपायर्स यू फार दीज राइटिंगस- मेरे कहने से पहले ही वीरेन्द्र जी कह उठे- ओनली हर हसबैंड- वे चौंक उठे - इज इट ट्रूः मैंने हँसते हुए कहा हन्ड्रेड परसेन्ट ट्रू ,यू आर लकी। बाबू सिंह की नजरे मेरे चेहरे पर भाग्य के निशान खोज रही थीं। हर प्रसाद जी उड़िया लोकगीत गाने लगे। पांचों भाषाओं की उँगलियाँ टेबल पर थाप दे रही थी। सोम जी धीरे से बोल उठे आप के सरदार जी आ गये। मैंने देखा जय के साथ अमर बाबू - मैंने उन दोनों को अन्दर ही बुलाया क्योंकि इस घेरे से निकलने के मुझे आसार नज़र नहीं आ रहे थे।

मणिपुरी कवि इबोपिसाक की कविता- आई.एम.ए. पेसेन्ट आय ट्रॉड सरीली अपोन दे रोड आफ लाइफ- यूँ लगता था भावना के स्तर पर हम एक हैं। भाषा की दीवार हमें अलग किये है। अब उड़िया कवि अश्विनी जी गा रहे थे। ‘‘तुमकु देखिबा माने सात पूर्वजन्म आउं सात पट जन्म एक संगे निभायबा‘‘- पाँचों भाषाओं के ताल पड़ रहे थे। फिर मुझसे आग्रह हुआ। मैंने कहा - मैं सिर्फ रोना जानती हूँ गाना नहीं। लीला विद्यापति गाना शुरू की - मणिपुरी गाना हुआ। मैथिली लोकगीत के लिए मैंने अपने देवर जय को फँसा दिया। फिर जो समा बंधा - पाँचों भाषाओं की ताली उन्मादावस्था में वातावरण को गले लगा रही थी। ‘‘अहाँ आबै छी किएक ने पहाड़ भेल छी, असमंजस में ओझा हम तार देल छी‘‘- हर प्रसाद जी ने कहा एक ब्यूटीफुल ओमेन कान्ट बी ट्रूथफुल, अ ट्रूथफुल ओमेन कान्ट बी ब्यूटीफुल- मैंने भी छूटते ही कहा- परहेप्स इट इज योर वोन एक्सपीरियेंस- सभी हँस पड़े।

उस समय हाल ही में छाया उन्माद वस्तुतः हँसी का नहीं रूदन का था। सभी रो रहे थे। बाबू सिंह ने कहा- आज के बाद हमें लोग इस जन्म में फिर मिलें कि नहीं कौन जानता है। हर प्रसाद जी ने कहा हम जगन्नाथ संगीत गायेगें- बंगला ने कहा- हम रविन्द्र संगीत- मैथिली ने कहा हम विद्यापति संगीत- और तालियाँ बज उठी। सारा वातावरण झूम

रहा था। किसी के उठने की जरा सी इच्छा नहीं थी। सभी उस समय को पकड़ कर मुट्ठी में रखना चाह रहे थे। आह- कितनी दारूण बेला थी- एक आँख में हँसी सजी , एक आँख में पानी , रात और दिन- अंधकार और प्रकाश एक ही पल में, एक ही मंच पर गलबहियाँ डाले थिरक रहे थे।

उठने में भी पहल मैंने ही की। उड़िया ग्रुप पहले विदा हो गये- हम लिफ्ट से नीचे जाने के लिए उतरे लेकिन लिफ्ट बीच में ही रूक गयी। देखा सेकेण्ड फ्लोर पर उड़िया ग्रुप नीचे जाने के लिये खड़ा था। हमें हँसी आ गयी वेदना मिश्रित हँसी-अश्विनी जी ने कहा- शेफाली जी, इन एवरी मीटिंग वी आर पार्टिग ए लिट्ल---

हम टैक्सी से इन्टरनेशनल बुक फेयर देखने के लिए विदा हुए। रास्ते में इलाजी ने पूछा- आप इतना हँसती रहती हैं पर कविता क्यों इतना ट्रेजिक लिखती है? मैंने कहा- हँसू नहीं इलाजी तो जी नहीं पाऊं । दो ही तो मेरी विशेषता है कि मैं बिना हँसे, बिना बोले रह नहीं सकती –

जो उपर उपर खूब हंसते हैं , वे अंदर ही अंदर बहुत रोते हैं –इला जी ने कहा – आखिर भावमयी कवयित्री तो वो थी ही –एक निःश्वास मैंने –एक इला ने – ये दो निःश्वास आपस में बातें करने लगे --------

कलकत्ता प्रवास की अंतिम उषा को प्रणाम करते मैं उठ बैठती हूँ। आज तीन दिनों से जिस साहित्यिक वातावरण में मानस का राजहंस किल्लोल कर रहा था, लगा जैसे सबकुछ पीछे छूटता जा रहा हो। शम्भू जी के साथ कालीघाट गयी काली माता के दर्शन के लिये। लेकिन वास्तव में सबकुछ देख कर ऐसी अनुभूति होती है कि मंदिर- मस्जिद सिर्फ अपने संतोष के लिये ही लोगो ने बनाया है, जब भगवान और खुदा का बंटवारा, नाप -तौल, मोल- मोलाय देख एक अवसन्न मानस धार अवरूद्ध हो नास्तिक हो जाने का भरम देता है। वैसे मैं पूजा करती हूँ ,भगवान के चित्र, धूप दीप नैवेद्य सब रख अर्चना भी करती हूँ , किन्तु, अन्दर से मैं कबीर पंथी हूँ, निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासिका। परमात्मा तो हमारे अंतर् में अवस्थित हैं, अपने अंतर् को नहीं देख हम कस्तूरी मृगों की तरफ विक्षिप्त से भटकते रहते है। जिसका हृदय जितना निश्छल , पवित्र होता है, ईश्रर उसके हृदय में उसी तरह वास करता हैं। और उस दिन की काली पूजा मेरे मानस पर एक पेंटिंग की तरह उजागर है।

पूजा एवं दर्शनों के लिए भक्तों की अपार भीड़ पंक्तिबद्ध खड़ी ,एक लम्बी दीर्घ पंक्ति.... शम्भू जी के साथ मैं भी उस पंक्ति में लग गयी, कदम कदम पर रास्ते के दोनों ओर हृष्ट-पुष्ट पंडे खड़े थे, पैसा देने के बाद ही हमे आगे बढ़ने देते और एक जगह संकरा रास्ता था, स्थानाभाव के कारण दोनों ओर बने खम्भे, दोनों खम्भों पर दोनों पैर रख पण्डा खड़ा था, उसके दोनों पैरों के बीच से भक्त जा रहे थे,उसे पैसे देने के बाद ही भक्त आगे बढ़ते। मेरी तो सांस ही रूकी थी,अंतरतम से सिर्फ माँ की गुहार निकल रही थी, एक विहलता, मूर्ति दर्शन की उत्कंठा खत्म ही हो गयी किन्तु, शम्भू जी के दृढ निश्चय से शक्ति का दर्शन हुआ। वहां से आने के बाद मैं जय के साथ अपनी छोटी मौसी , सुनन्दा मौसी से मिलने चली गयी, महात्मा गाँधी रोड, जो कभी हैरीसन रोड के नाम से प्रसिद्ध था। मौसी ने एक नई मछली ‘शंकर’ खिलायी, जिसका स्वाद ही मुझे अच्छा नहीं लगा। सारा दिन टुक्कू जी और मंजू की हँसी से घर की दीवारें हंसती रही—मंजू की बातें –दीदी , जिंदगी जिन्दादिली का नाम है –मुर्दादिल क्या ख़ाक जीया करते हैं –और फिर एक ठहाका --

शाम में जय के साथ कवि सममेलन के लिए विदा हुई। भाषा परिषद के गेट पर जैसे ही पहुँची मणिपुरी कवियों ने रोक लिया- फर्स्ट टेक अकप ऑफ टी- मैंने कहा- एक्सक्यूज मी, आई गाट टायर्ड। आई वान्ट वनली अ ग्लास ऑफ

वाटर - लेकिन वे नहीं माने नो -नो दिस विल वी आवर फर्स्ट एन्ड लास्ट कप ऑफ टी- और इस निर्दोष आग्रह को मैं लौटा न सकी।

ऊपर आकर मैं भी उन के एड्रेस उन्ही की हस्तलिपि में लेने लगी। कल पता लेते वक्त मणिपुरी इबोमेहा सिंह ने कहा - हाउ केन यू रिमेम्बर आल दीज परसन्स? मैंने कहा मि0 सिहं - यू नो वेल, पोएट्स हैव ओनली मेमोरीज विद् देम ,वी नो इच अदर विद अवर सेन्टीमेन्टस ----अचानक उमाकान्त जोशी आ गये - मैंने प्रणाम किया आश्चर्य आया उन्होने देखते ही कहा - मैंने आपकी विप्रलब्धा रख ली है। पर अभी तक पढ़ नहीं पाया हूँ। अब जाकर पढूंगा। मैंने आशीर्वाद मांगा तो बोल उठे आशीर्वाद तो अन्तःप्रेरित होती है जो सब आपके लिए है। कुछ दिशाएं मुझे मिलती रही। इतने में बंगला की कवयित्री नवनीता देव सेन आ गयी। मेरे और जोशी जी के सामने मेज पर बेतक्लुफी से बैठ गयी। मेरी लाल पाढ की सिल्क की सफेद साड़ी देख कर कहने लगी- आप मिथिला की होकर बंगला साड़ी पहनी हैं और मैं बंगाल की होकर कटक की - मैंने कहा - इससे प्रतीत होता है कि हमारी आत्मा एक है – उमाकांत जोशी जी हंसने लगे।

कवि सम्मेलन शुरू हुआ। मंच पर बंगाली, आसामी कवि हीरने भटटाचार्य, उडिया कवि राजेन्द्र पान्धा बैठे थे। राजेन्द्र ही ने अपना गुलाब उडिया की ओर से मुझे भेंट किया। मैं ने भी शिष्टाचार के नाते मैथिली की ओर से अपना गुलाब उन्हें दिया। राजेन्द्र जी ने सबसे पहले उड़िया कविता का पाठ किया। इसी दौरान हीरेन जी ने पूछा आप के हसबैंड क्या करते हे। मैंने कहा पी पी और सब? मैं ने कहा - बड़ा बेटा दिल्ली में बी. में पढता है - हवाट डू यू से - मैंने कहा ओनली फैक्ट-उससे छोटी लडकी आई ए में पढती है। क्या आपका शादी चौदह बरस में हुआ? ----नहीं पन्द्रह बरस में हुआ –मैंने उन्हीं के टोन में कहा .तब तक राजेन्द्र जी कविता पढकर आ चुके थे - हीरेन जी को इसी अचम्भित अवस्था में छोड राजेन्द्र जी की ओर बढी - आप जानते है - मैं आपसे बडी होऊँगी उम्र में - क्या बात करती है - उपहास के स्वर में राजेन्द्र जी ने कहा मेरा जन्म 44 ..... में हुआ है –और मेरा 43 में --ओह- आपसे एक साल छोटा हूँ ---

मेरा बेटा बी.ए. में पढता है –

हवाट! क्या कहती है? –

बेटी आइ.ए. में पढ़ती है--- - मैंने हंसकर कहा -

कविता पाठ होता रहा। मेरा नाम आया। तालियां बज उठी। मैंने अपनी कविता पढ़ी ' प्यासी प्यास ' बिछुडन का दर्द था या "प्यासी प्यास " थी, कविता की सारी पंक्तियां दर्द से भर गयी। सारा हाल भीग गया - यह मैं स्वयं महसूसती रही।

और फिर विदाई के एहसास में डूबे उमाकान्त जोशी जी की कविता के साथ कवि सम्मेलन खत्म हुआ। मस्त प्रोफेसर हर प्रसाद जी ने बड़ी ही गर्मजोशी के साथ सबों से हाथ मिलाया - मै खामोश किनारे खडी थी - उन्होने मेरे पास आकर एक गाढे अपनत्व के साथ मेरे हाथ खींच लिये - रीमेम्बर अस-

सारा वातावरण विदाई की व्यथा में डूब गया। सभी एक दूसरी से विदा ले रहे थे - आसामी कवि नवकान्त बरूआ ने कहा - बहिन जी अपना हाथ देना - मैंने हाथ बढाया - मेरे हाथ को बड़ी ही श्रद्धा से अपने माथे से टिका कर कहा-

बहिन जी याद रखना। मेरे नयन अघुपूरित हो उठे। सहरसा आइएए- फंक्शन करके हमें बुलाइये - इतना पेमेन्ट कहां से करेगें। उन्होने कहा - मुझे सेकेन्ड क्लास का फेयर आने जाने का और हास्पिटालिटी चाहिए - मैंने कहा हास्पिटालिटी में सहरसा कहीं से कम नहीं - इस पर वे बोल उठे --देन आइ वान्ट वनली हास्पिटालिटी ---और अपने इस निर्दोष भाई की निश्छलता पर कितने आँसू खंड खंड हो गये।

बाबू सिंह बोल उठे - बहिन घबडाना नहीं- हम फिर मिलेगें - अर्थ इज राउन्ड - तुम्हारी कविता मणिपुरी में अनुवाद कर तुम्हें भेजेगें – ऐसा लग रहा था समय रूक जाय। पहली भेंट में हम जितने अजनबी थे, आज इस विदाई बेला में हम एक दूसरे से उतने ही एकात्म ।

पर समय का चक्र न रूक पाया है न रूकेगा। पांच भाषाओं का बना बनाया परिवार बिखर रहा था - टूट रहा था - हृदय में नये रिश्तों का दर्द लिये पहचानेपन की व्यथा लिए-

ओमप्रकाश जी ने दिल्ली आने का निमंत्रण दिया। इलाजी अपने मिलने वालों में, लीला अपने में –सोम जी ,वीरेन्द्र जी सबों के चेहरे पर बिछडने की अव्यक्त कराह , अस्पष्ट छटपटाहट थी। एक नक्षत्र निलय खंडित हो रहा था।

अनन्त गगन १९८३

रेल की पटरियां भी कितनी विचित्र होती है, चारों ओर फैली हुई बिखरी-बिखरी, कानपुर जंक्शन पर भी पटरियां पड़ी हुई है।

मनुष्य भी तो काल की पटरियों पर इसी तरह बिखरा, फैला पड़ा रहता है।

रेल की पटरियों पर यत्र-तत्र पड़े डिब्बे जैसे चारों ओर अनेकों चेहरे, कितने आत्मीय, कितने अपने, मगर सारे पत्रहीन नग्न वृक्ष जैसे, ना तो किसी को शीतल छाया दे सका और ना ही सुभाषित हवा का झोंका।

एक गाड़ी आ रही थी, एक जा रही थी। लगातार लोगों के चेहरों पर तरह-तरह के भाव छलक रहे थे, किसी को मिलन की उत्कंठा हँसा रही थी तो कोई बिछड़ने के दर्द से कराह रहा था।

क्या ? एक प्राकृतिक रहस्य है ये सब ?

आवागमन की प्रक्रिया, जन्म मरण का कालचक्र, मिलन बिछुड़न का जीवन चक्र यह सभी एक दूरी पर अविरल चक्कर काट रहा है।

मन की गति और समय की गति में हर पल होड़ लगी रहती है। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर से बनने वाली यह प्रकृति संपूर्ण मानव तन मन में प्रतिभाषित है तभी तो मानव स्वयं अपने को नहीं पहचान पाता कि असल में उसकी चाहत क्या है।

काश ! इसे जानने के लिए वह थोड़ा वक्त चिंतन-मनन में लगा पाता।

मगर रेल की पटरियां तोड़ती है तो जोड़ती भी है।और यही भाव मुझे सबसे ज्यादा आकर्षित करती है। तोड़ते तो सभी हैं, पर जोड़ने वाले कम ही होते हैं। तोड़ने में तो एक पल भी नहीं लगता, पर जोड़ने में कितने ही तन और मन की आहुति देनी पड़ती है, फिर भी वह जुट नहीं पाता। मैं हमेशा ही मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का प्रयत्न करती रही, पर सतह धरातल के लोग मुझे कभी नहीं समझ पाए और ना ही मुझ से प्रभावित हो पाए। फिर भी मैं अविचल भाव से वसुधैव कुटुंबकम के उद्देश्य पूर्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रही। आज ये रेल की पटरीयां मुझे भी तो अपने बेटे से मिलाने के लिए ही ले जा रही हैं जहां जाने कि शायद मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। हां भारत की राजधानी दिल्ली की यह मेरी प्रथम यात्रा थी, जहां मेरा जेष्ठ पुत्र राजीव वर्मा हिंदू कालेज में इतिहास प्रतिष्ठा का तृतीय वर्ष का छात्र है। इन बीते 3 सालों में उसकी जिंदगी किस किस तरह से बीती, हमने चाहते हुए भी ध्यान नहीं दिया है।

सिवाय इसके कि वह दिल्ली विश्वविद्यालय में लगातार प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त करता रहा। आज ट्रेन की गति बहुत तीव्र है पर इससे भी तेज मेरे मन की गति है जो उड़ कर मेरे राजू के पास पहुंच जाती है। बीते दिनों की सारी स्मृतियां सजीव हो उठती है। छोटी बेटी तरुणा का जन्म सहरसा में ही सिजेरियन हुआ था। उस ऑपरेशन के बाद मुझे इंफेक्शन (संक्रमण) हो गया था। उस स्थिति में राजीव की सेवा और सहानुभूति देखकर जैसे मेरे हृदय में कुछ चुभ सा गया था।

वैशाख महीने की जलती धूप में भाग-भाग कर दवाएं लाना, भूखा-प्यासा, बेहाल, बदहवास मेरी सेवा करता रहा। आखिर हमने उसे क्या दिया ? उसके पूरे शरीर पर चेचक निकल आए थे। मेरा चैन छिन गया, मेरी सांस रुकने लगी। राजू पर हीं मेरी सांस अटकी पड़ी थी। पर मैं क्या करूं ? मैं तो असहाय बिस्तर पर पड़ी थी। जिंदगी तो खुद ही एक सफर है जिसे हम सब को पार करना होता है। सफर यानी यात्रा और सफरिंग यानी पीड़ा। जिंदगी की यात्रा तय करने में कितनी पीड़ा, कितना संघर्ष शारीरिक व मानसिक सहना पड़ता है। मानव की मानसिक प्रक्रिया के साथ कितनी सारी सफरिंग जुड़ी होती है। यह अंग्रेजी शब्द "सफरिंग" सफर की पीड़ा को व्यक्त करता है। विचित्र संयोग है - सफर करती है यह मानसिकता और सफरिंग से जुड़ा यह हमारा जीवन।

हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से श्रीधर जी का पत्र आया था।हिंदी साहित्य सम्मेलन का 40 वां अधिवेशन प्रतापगढ़ में होने जा रहा था, जिसमें मेरी उपस्थिति को उन्होंने अनिवार्य बताया था। कितनी बार हमें इलाहाबाद से निमंत्रण मिला; खासकर श्याम कृष्ण भाई का बार-बार आग्रह।

मगर क्या करती सफरिंग भोग रही थी तो कैसे सफर करती। प्रतापगढ़ वर्मा जी के साथ गई थी। वहां पर काल किंकर पंत जी की जीवन स्थली प्राकृतिक सुषमा संपन्न थी। सबकुछ अभूतपूर्व था।नहीं थे तो सिर्फ श्याम कृष्ण भाई। पता चला कि हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग दो भागों में बांट चुका है - श्रीधर शास्त्री और प्रभात शास्त्री। श्याम कृष्ण जी सहायक मंत्री प्रभात शास्त्री जी के साथ थे।

साहित्य तो जोड़ता है तोड़ता नहीं, लेकिन हमने टूटे साहित्य को देखा था, भोगा था। उतनी दूर प्रतापगढ़ पहुंचने पर जब हमने पता किया कि यहां से दिल्ली कितनी दूर है, तो पता चला कि जितनी लंबी यात्रा करके हम यहां तक पहुंचे हैं उतनी ही लंबी यात्रा के उपरांत दिल्ली पहुंच पाएंगे। तब लगा जैसे दिल्ली सच में दूर है।

रास्ते में इलाहाबाद स्टेशन आने पर दिल कचोटने लगा। काश! श्याम कृष्ण पांडे जी को खबर की होती तो वह अवश्य ही हमसे मिलने स्टेशन आते। चित्रकूट धामवासी धर्मभाई शिवप्रसाद और उनके पुत्र दीपचंद, जिनके हृदय में मेरा एकछत्र राज था। आज अगर मेरी यात्रा के बारे में उनको ज्ञात होता तो सुदामा के लिए कृष्ण जिस तरह नंगे पाव दौड़ पड़े थे उसी तरह वह भी मेरे पास आ जाते भागे-भागे।

वैसे श्याम कृष्ण भाई व शिव और दीप से कभी मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ है, परंतु कादंबिनी, सारिका और राष्ट्रभाषा में प्रकाशित मेरी कहानियों और कविताओं के माध्यम से हम लोग जन्म जन्मांतर के संबंधी बन चुके हैं। प्रत्येक रक्षाबंधन में शिव भाई पहले मेरी भेजी हुई राखी को पूजा के फूल व देवताओं के वरदान की तरह धारण करते हैं, उसके बाद ही अपनी बहनों की राखियों को। सच में स्नेह की सत्यता को समय की खंड से ना जोड़कर हृदय की गहराइयों से अनुभव करना चाहिए। रिश्ते मात्र रक्त संबंधों के नहीं होते हैं, हृदय से होते हैं,भावनाओं से होते हैं। रक्त संबंध तो कभी-कभी विवशता बन जाता है और कभी-कभी उदात्तता में विशाल।.... और इस अनदेखे भाई के प्रति मै सजल हृदय और सजल नयन से सादर आभार और स्नेह से भर जाती हूं ँ। मैथिली साहित्याकाश जाज्वल्यमान नक्षत्र डॉ. जयकांत मिश्र, डॉ सुधा कांत मिश्र,इसी इलाहाबाद की पावन भूमि पर हैं। श्रद्धा और आदर से सिर झुक जाता है।

हे! स्टेशन के पावन पवन, उन लोगों के पास मेरा संदेश पहुंचा दो, मेरा प्रणाम दे दो, मेरी तरफ से क्षमा मांग लेना क्योंकि मैं किनारे-किनारे तिनके की तरह प्रबल प्रभंजन के वेग में उड़ी जा रही हूँ। हैं उन सबकी स्नेह स्मृति के साथ।

किसी पटरी पर गाड़ी लखनऊ की तरफ जा रही थी तो फिर एक अदब के साथ सर झुक जाता है। उन शायर,कवि और मौसिकीकार के लिए।

"ये क्या जगह है दोस्तों... मेरे लिए भी क्या कोई उदास बेकरार है..." उमराव जान का दर्द जैसे लखनऊ से उड़कर मेरी नस नस को सिहरा देता था। ऐसा लग रहा था जैसे मेरे लिए भी कोई कहीं उदास और बेकरार है.... और उस समय काल में समाज में नारी की अवस्था, हीनता का परिचय मन को अवसन्न कर देता है।उमराव जान के पिता ने झूठी गवाही दी थी जिसके फलस्वरूप उसका अपहरण कर लिया गया और उसके मां-बाप ने उसके पास आने का द्वार बंद कर दिया था। इतनी दयनीय स्थिति थी नारी की। समाज तो दूर माता-पिता भी बेटी के विवशता को नहीं समझते थे। गाड़ी भागी जा रही थी अपनी गति, वेग से और मेरा मन सहरसा की एक बीती हुई शाम में डूब गया।

मैं राजू और अपने देवर जय के साथ सड़क पर टहल रही थी। दूधिया चांदनी ने जैसे हम लोगों को अपने श्वेत शांत परिधान में आवेष्ठित कर लिया। घर के बगल में मधेपुरा-सहरसा रेलवे लाइन था। सामने से कोई ट्रेन आ रही थी। मैने कहा लगता है जैसे मैं आत्महत्या करने जा रही हूं। और मैं तेजी से ट्रेन की तरफ दौड़ने लगी और राजू भी नाटक में शामिल होते हुए चिल्लाने लगा, "रुक जाओ मम्मी, रुक जाओ मम्मी। डैडी, मम्मी को रोको।-- राजू अपने चाचा को डैडी बोलता था।

जय ने कहा राजू तुम मम्मी को रोको, मैं लंगोट कस के आता हूं।सामने से आती ट्रेन मुड़कर दूसरी तरफ अपनी पटरी पर चली गई और मैं बोल उठी- "राजू चिल्लाते रह गया,ट्रेन चली गई और मम्मी पटरी पर किस्त किस्त में बिखरी पड़ी रह गई।" देवर ने कहा, भाभी वह ट्रेन भावनाओं की आंधी थी जिसमें आप कुछ देर के लिए चक्कर काटने लगी। वह आंधी जैसे उठी थी वैसे ही अपने रास्ते निकल गई और आप फिर जस की तस रह गई। अनजाने में ही जय कितना बड़ा सच बोल गया था ,और आज यह मेरी दिल्ली की प्रथम यात्रा जो मेरे लिए सर्वथा अकल्पनीय थी। सहरसा के उदास दोपहर में बैठी मैं स्वयं में ही खोई हुई खिड़की से नजर आते आकाश के एक टूकड़े को निहार रही थी। नीले आकाश का रंग धूसर,जैसा निश्छल हृदय की सत्यता से धूमिल छवि जैसा। क्योंकि हृदय की सत्यता पर लोगों को सहज में विश्वास नहीं होता है। असत्य में जीने की प्रक्रिया से त्रस्त मानव।

डाकिया के दिए एक पत्र के साथ ही मन विस्मृति से स्मृति में आ गया। संबलपुर उड़ीसा से पत्र आया था। समास प्रकाशन की तरफ से पूर्व भारत कवि सम्मेलन और सेमिनार 3 से 4 जून 1983 को था।आने जाने का फर्स्ट क्लास का व अन्य खर्चे भी साथ में। 3-3 आईएएस ऑफिसर व अश्विनी मिश्रा का अनुरोध, हार्दिक अनुरोध।क्या करें ...क्या करूँ क्या ना करूँ।

विचित्र मानसिकता में फंस गई। 1 जून को वंदना का ऑल इंडिया मेडिकल टेस्ट दिल्ली में था। सहरसा से पटना। पटना से दिल्ली और दिल्ली से उड़ीसा का त्रिपेक्षण,मगर सभी समस्याओं का समाधान वर्मा जी के पास हमेशा ही होता है, तभी तो वह मेरे पति से ज्यादा फ्रेंड, फिलॉस्फर और गाइड हैं। मैं घर में रजनी हूं और बाहर शेफालिका।

रजनी से शेफालिका बनाने का सारा श्रेय उन्हीं को जाता है। एकदम से निर्णय ले लेते हैं। हम लोग पहले दिल्ली जाएंगे। 1 जून वंदना का पेटर दिला कर दो जून को कलिंगा एक्सप्रेस से उड़ीसा के लिए रवाना हो जाएंगे। अचानक एक झटके से गाड़ी रुकी। स्टेशन था भर्थना। सोनभद्र को नहीं रुकना था फिर भी रुका। लगा जैसे रुकने के सोनभद्र की भर्त्सना कर रहा है। आप अपनी गलती को सुचारू नहीं रख सकते थे? आप अपने नियम पर नहीं चल सकते थे?

और उससे आगे का स्टेशन था "इकदिल"। मेरी मन की तरह यह भी सूना-सूना सा लग रहा था। अपने आप में इकदिल और सोनभद्र जैसे उसकी उपेक्षा करता हुआ विजयी मुद्रा में आगे बढ़ गया और इकदिल मौन मूक बना रहा। टुंडला मे गाड़ी रुकने पर हम लोगों ने स्टेशन से छोले भटूरे लेकर खाए। सबसे ज्यादा गहमागहमी इस स्टेशन पर देखने को मिला।

गाड़ी आगे बढ़ी तो जिस स्टेशन में हम सबका ध्यान आकृष्ट किया वह था , "मितावली"। वर्मा जी बोल पड़े, देखो कितना सुंदर और प्यारा नाम है, "मितावली" मैंने भी हां में हां मिलाई और कहा, हां सच में मित्रता का आमंत्रण देता कितना स्नेहभरा नाम है। यह सोनभद्र भी यत्र-तत्र, चाहे-अनचाहे स्टेशनों पर नियम और समय का उल्लंघन करता हुआ रुकता रहा पर "इकदिल" की व्यथा को नहीं समझ पाया, "मितावली" की मित्रता को नहीं स्वीकार सका। हम इंसान भी कभी-कभी अपने पराए को पहचाने बगैर कौड़ी के मोल हीरा गंवा देते हैं।

दिल्ली की यह यात्रा भी कुछ विचित्र सी ही लग रही थी। राजू की फाइनल परीक्षा थी। 3 वर्ष कठोर परिश्रम के ताप में तपकर यह दुबला पतला लड़का दिल्ली विश्वविद्यालय में अपना एक अस्तित्व बना चुका है। और ठीक परीक्षा के समय हम लोग उससे मिलने जा रहे थे। वह भी मात्र 2 दिनों के लिए।

सोनभद्र के दिल्ली पहुंचने का समय 11:55 था पर लगता है यह 4 या 5 बजे से पहले नहीं पहुंचने वाली थी। बरहन स्टेशन के अगल-बगल गेहूं के फसल की तैयारी मई महीने की समाप्ति चल रही थी। उसके बोझों का टाल नूतन डिजाइन में गुंबज नुमा मंदिर जैसा बना हुआ था। सोनभद्र की यात्रा बहुत थका देने वाली लग रही थी। नया-नया हाल ही में इसका उद्घाटन हुआ था, मगर बेकार कोच, बेकार बर्थ। किसने इसका नाम सोनभद्र रखा था, इसका नाम तो काठभद्र होना चाहिए था, सोने का गुण तो इसमें कहीं नजर नहीं आ रहा था।

C-7 के 43,44 पर बैठे हम लोग उसके रूप-गुण का विवेचन कर रहे थे, जो अपने नियत समय से 2 घंटे से भी ऊपर की लेट चल रही थी। कुछ यात्रियों ने कहा कि शायद यही कोच काठ(लकड़ी का बना है बाकी सब सोने जैसे ही चमक रहे हैं। मैं सोचने लगी कि दिल्ली की पहली यात्रा और वह भी इतना दुर्भाग्यपूर्ण कि ऐसे कोच में हमें जगह मिली। अपने देश में गांव के दिन हीन वाली स्थिति पूर्ववत ही है। रास्ते में सभी गांवों को एक जैसा है पाया। हर जगह वही अर्धनग्न और निरक्षर लोग और बच्चे....।

9:30 बजे हम लोग अलीगढ़ के बाद दनकौर स्टेशन पहुंचे। यहां पर भी गाड़ी रूक गई थी। गर्मी और प्यास से हमलोग बेहाल हो गए थे। 10 पैसे गिलास में एक गिलास पानी खरीद कर उसी छोटे से गिलास से मैं वर्मा जी और वंदना तीनों एक एक घूंट से गले को तर किया, पर प्यास जस की तस थी। गाड़ी तुरंत ही स्टेशन से खुल चुकी थी। यह ट्रेन है विचित्र ही थी ना तो पैंट्री कार थी और ना ही चाय ना पानी। सिर्फ कहने के लिए सुपरफास्ट।

प्यास, हां प्यार से स्मरण हो आया, हमने जिंदगी में जो चाहा वह भी इसी तरह दो बूंद दिखाकर मेरी प्यास को और भी प्यासा है बनाती रही। तृप्ति कहां मिली कभी भी। सास ससुर का प्यार अपूर्ण, मृत्यु से पहले बाबूजी स्नेह की जलधार दिखाकर अतृप्ति के सागर में भटकते छोड़ गए, हमेशा के लिए। भाई बहन देवर भाभी का प्यार रात दिन प्रकाश अंधकार आंसू मुस्कान चांद सूरज की तरह कभी उगता तो कभी डूबता रहा।

कभी कभी महसूस होता है कि अकेले अकेले में सभी एक दूसरे से बढ़कर प्रेम और आदर देने वाले हैं परंतु जब भी हम एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो मैं हमेशा ही अपने आप को सबसे अलग थलग प्यासी चातकी सी स्नेह स्वाति

की एक बूंद के लिए तरसती पाती हूँ। शायद यही मेरी नियति रही है। प्यास से मेरा तन और मन दोनों हीं झुलस रहा था। पता नहीं कब दिल्ली पहुंचूंगी और कैसा वो दिल्ली का लड्डू होगा जिसे खाकर भी पछताउंगी और नहीं खाकर ही पछताती ही रहूंगी।

दनकौर में बड़े ही कलात्मक ढंग से उपलों के सुंदर-सुंदर घरनुमा टाल बने हुए थे। कितनी कारीगरी थी उसमें। सच ही, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर कलाकार रूप स्वरूप पूर्णतः रचा बसा होता है,बस जिसके पास अभिव्यक्ति है वह है वो ही ईश्वर का वरदान कहा जाता है। बिहार में इस तरह की कलात्मकता कभी-कभी खलती है। मगर नहीं अर्थहीनता हीं इस अभाव की जननी है।

दौड़ती ट्रेन से नजर आती दूर भागते गांव, जीर्णशीर्ण भग्न मकानों के अंश पुरानी सभ्यताओं का अवशेष प्रतीत हो रहा था। मन करता था इन खंडहरों में जाकर उनसे पूछूं कि आप अपनी कहानी सुनाओ। आपने तब से अब तक क्या-क्या झेला ? किस तरह से अपना यह रास्ता तय किया ! कुछ तो बताते जाओ । मगर ट्रेन की गति के साथ ही सब पीछे छूट गए।

मारीपत स्टेशन से कुछ फर्लांग हटकर एक समृद्ध गांव या शहर जैसा बसा बसा हुआ था। "फिरोजाबाद".. हां, यही नाम था उसका। देखते हीं कलाइयों में पड़ी चूडियों की खनखनाहट और चमक पर नजर टिक गई। सुहाग का प्रतीक, कितना अद्भुत है यह शहर तो सौभाग्य, अहिबात और सब के लिए खुशियां बांटने के पुण्य कार्य में लगा हुआ है। चारों तरफ मिल और फैक्ट्रियों से निकलने वाला धूंआ समस्त वातावरण के प्राकृतिक रंगों को धूमिल आवरण मे छुपा रखा था। औद्योगिक शहर एवं गांव कितने अप्राकृतिक हो जाते हैं। हाथरस स्टेशन आंखों के सामने से भाग गया काका हाथरसी को हमने मन ही मन प्रणाम किया। हवा बेईमान नहीं हुई है अभी भी, कुछ न कुछ ईमानदारी हवा के झोंके में बसी है इसीलिए काका तक मेरा प्रणाम वह अवश्य पहुंचा देगी। चिपियाना बुर्ज पहुंच गए। गुलाबी साटिन के लहंगे में एक तन्वंगी टमटम पर खड़ी थी। गाड़ी फिर रुक गई। कोई गाडधी अगर थोड़ी लेट हो गई तो आगे उसे और- और लेट होना होता है। ग्रीन सिग्नल के लिए इसे रुकना पड़ता है। सोनभद्र लेट चली फलस्वरूप हर जगह उसे भिखारिन की तरह सिग्नल की भीख मांगते हुए आगे बढ़ना पड़ता है।

चिपियाना बुर्ज से लेकर गाजियाबाद तक जैसे एक शहर सा फैला हुआ सा लगता है। औद्योगिक शहर तरह-तरह के कल कारखाने में सांस लेते, उंघते हैरान-परेशान, लोहे लक्कड़ की मशीन जैसे जीवन जीता यह शहर। मिल के पाइपों से निकलते सांसों के स्याह उच्छवास छोटे-बड़े, नए पुराने अर्ध निर्मित मकानों की पंक्तियां। उपलों की छोटी-छोटी सुंदर मनमोहक मंदिर दूर-दूर तक छितराया हुआ है। सघन आबादी की बस्तियां अपनी पुरातन छटा से दर्शकों को आमंत्रण देती हुई सी प्रतीत होती है।

गाजियाबाद शहर भी दूर दूर तक फैला हुआ है और हम सब के साथ साथ चल रहा है। शहर वही क्रम वहीं पर बीच में आ जाता है साहिबाबाद स्टेशन। साहिबाबाद के आदर में सोनभद्र फिर रुक जाती है आगे बढ़ने के लिए सिग्नल की आशा में। सही है, जो अपने जीवन काल में एक बार अवसर चूक जाता है फिर वही घिसी-पीटी लकीर का फकीर बन कर रह जाता है।

पता नहीं इस साहिबा के अंतर में व्यथा की कौन सी कथा छुपी है, मन करता है बेनकाब कर दूं इस साहबजादी के मन को और पढ़ लूं इसकी पीड़ा का एक-एक अक्षर। अब श्यामांगी यमुना के निर्मल जल धारा के ऊपर से हमारी गाड़ी हहराती हुई चली जा रही है। मन प्रफुल्लित हो जाता है, जमुनिया पवन के सुखद आलिंगन से।

आनंद विहार कॉलोनी का निर्माण हो रहा था, वहां पर सारे नए मकानों के नए-नए डिजाइन,एक मंजिल, 2 मंजिल, 3 मंजिल बनते देख कर आनंद विहार नाम बड़ा ही सार्थक लगा। दिल्ली की पहली पहचान हमने इंद्रप्रस्थ स्टेडियम से पाया। तन और मन दोनों रोमांचित हो उठा,".. तो यही है दिल्ली, हिंदुस्तान का दिल- दिल्ली।"

समस्त भारतवर्ष इसी एक दिल्ली से सांस ले रहा है। दिल्ली हिंदुस्तान का ड्राइंग रूम है। दिल्ली हिंदुस्तान का गुलदस्ता है। कितने ही कवि एवं शायरों की उक्ति बनती यह दिल्ली। उदाहरणों की कल्पना को साकार करती यह दिल्ली। देश की राजधानी सुदूर इतिहास का एकमात्र साक्षी। तिलक ब्रिज मिंटो ब्रिज से नीचे सड़क की सड़कों की छाती चीरती सरपट भागते यह अनगिनत वाहन जैसे जनसमूह के बदले गाड़ियों का समूह बने उड़ रहे हैं।

मगर मेरे मन में नाना प्रकार की विचार तरंगे अलग-अलग प्रवाहित हो रही थी। राजू हमें लेने स्टेशन पर आया था। शिवकुमार ,रविशंकर क्या सोच रही हो अब तो पहुंच गए हम लोग, वर्मा जी का स्वर सुनकर मैं चौंक उठी। पता नहीं क्यों जैसे-जैसे स्टेशन नजदीक आ रहा था मन एकदम से साकांक्ष घनीभूत होता जा रहा था। रेल की पटरियां अचानक से चौड़ी होती जा रही थी, जैसे किसी पहाड़ पर छितराई सी पगडंडियां हो। यात्रीगण सामान समेटने लगे थे। करीब ढाई बजे दिन में हम लोग दिल्ली पहुंचे। राजू प्लेटफार्म पर खड़ा हम लोगों के इंतजार में, उसे देखते ही मेरी आंखें भींग गई।

"यह क्या मम्मी! आंखें पोंछ लो" पिंकी के स्वर सुनकर मैं चेतन हो अपने आँचल से किनारों से आंखें पोंछने लगी। वात्सल्य, ममता और प्रेम की त्रिवेणी जैसे राजू के लिए मेरे हृदय से निःसृत होने लगी। राजू की आंखे बचपन से ही नम रहती थी जैसे कितने अथाह सागर की वेदनाएं उसमें साकार हो।उसकी आंखों में हमेशा ही मुझे अपने हृदय का प्रतिबिंब झलकता था जैसे वह राजू की आंखें नहीं मेरी ही आंखें हो।

प्रेम जब अत्यधिक सघन हो जाए तो वाणी स्वतः अवरूद्ध हो जाती है। शिवकुमार मेरा छोटा भाई और भांजी का दूल्हा जो ईश्वर कंपनी में जनरल मैनेजर है एक आवश्यक मीटिंग के वजह से हमें लेने स्टेशन नहीं आ सके। राजू हम सब को एक टैक्सी में बिठाकर अशोक विहार स्थित शिव कुमार के यहां ले गया।

हिमांशु भागा भागा आया। शिप्रा का प्रेममय व्यवहार, स्वीटी की मीठी मीठी बोलियां, हिमांशु का अपनात्व, लगा जैसे हम लोग अपने घर सहरसा ही आ गए हैं। राजू हिंदू कॉलेज के हॉस्टल में रहता था और कल उसकी परीक्षा थी इसीलिए खाना खाकर वह वापस अपने हॉस्टल चला गया।

स्वीटी हिमांशु की बातें सुनते सुनते थकी हारी मैं कब सो गई कुछ पता ही नहीं चला। शाम 7:00 बजे नींद खुली तब तक गौतम भी आ गया था। हम सब बालकनी में चाय पीते हुए बातों में लगे रहे। मन कर रहा था एक बार फिर से भागकर राजू के पास चली जाऊं, पर उसकी परीक्षा की वजह से सब ने मना कर दिया।

दिल्ली के पानी में ब्लीचिंग पाउडर हमें बर्दाश्त ही नहीं हो रहा था। गौतम ने कहा ब्लीचिंग पाउडर कीटाणुओं को मारने के लिए डाला जाता है। वर्मा जी ने कहा, दिल्ली में लोग मरते नहीं हैं ?

इस पर गौतम ने सुंदर उत्तर दिया, हां दिल्ली में लोगों को जीवन जीने की इच्छा रहती है। हम सब लोग हंसने लगे। ठीक ही तो कहा था उसने इतना फास्ट जीवन इतनी तीव्रतम गति, पीछे मुड़ कर देखने की फुर्सत नहीं। शायद जो पीछे देखते हैं वह कभी आगे नहीं बढ़ पाते, इसीलिए जो आगे बढ़ना चाहते हैं वह कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते। सारे दिल्ली वालों ने अपने जीवन को इसी नियम पर आधारित कर रखा है।

शाम को शिवकुमार आया तो हम सब को देख कर बड़ा खुश हुआ। स्टेशन नहीं आ सकने की ग्लानि उसके चेहरे पर दिखाई दे रही थी। हिमांशु, गौतम ,शिवकुमार,शिप्रा सभी लोग मुक्त कंठ से राजू की तारीफ कर रहे थे। हम लोग चुपचाप सुनते और आत्मसात करते रहे। मन ही मन सोचते रहे कि कितने विशाल हृदय हैं यह लोग सभी क्योंकि आज के जमाने में कोई किसी की बड़ाई नहीं करता जबकि इसमें एक पैसा भी नहीं खर्चना पड़ता है। फिर भी लोग कितने कंजूस हो गए हैं एक दूसरे की बड़ाई करने में। कोई भी मनुष्य सर्वगुण संपन्न नहीं होता। सब में कुछ ना कुछ कमियां रहती ही है। अगर हम अच्छाइयां खोजें तो हजार गुण निकल आते हैं यदि हम बुराइयां खोजें तो लाखों बुराइयां निकल आती हैं। फिर क्यों ना हम मानव जीवन की उज्जवल पक्ष कहीं देखने का प्रयास करें। ऐसे में वे शिव कुमार का परिवार हमें जीवन रजतधवल हास से परिपूर्ण लगा।

दिल्ली की पहली रात, कितनी रात हम लोग जगे रहे और एक दूसरे की बातें करते रहे। एक दूसरे की तारीफ करते रहे। इतनी आत्मीयता, कितना प्रेम, कितना अपनापन, क्षण भर के लिए आँख लगी भी तो मै उठ कर बैठ गई। और खो गई यादों के मेले में..। स्मृतिछाया बनती रही और बिगड़ती रही।रात भर व्यथित बेचैनी में करवटें बदलती रही। संबंधों को रक्त संबंधों को नापती रही, तौलती रही। जात पात ,रक्त संबंध, अपनी जाति अगर अपनी होती, अपना संबंधी कोई अपना होता तो आज भाई भाई नहीं लड़ते। आपस में बंटवारा नहीं होता। छोटी-छोटी बातों को लेकर आपस में तू तू मै मै नहीं होती। और सुबह शिप्रा आदि के उठने से पहले ही हमने नहा धोकर तैयार हो गए।

8:00 शिवकुमार की गाड़ी से हम अपनी बहन के यहां डॉक्टर नरेंद्र वर्मा (श्री मणि पद्मजी के अनुज जी के यहां पहुंच गए। पाहुन लोग वहां नहीं थे। पर हमने उनके घर को देखा। सूना सूना घर द्वार, पर उनकी उपस्थिति की अनुभूति जरूर थी।

गौतम रेडियो सुन रहा था।.."ए मोहब्बत तेरे अंजाम पे रोना आया…." गौतम जल्दी से तैयार होकर हमलोगों के साथ स्टेशन चल पड़ा। उड़ीसा का रिजर्वेशन आर. ए.सी में मिल गया। स्टेशन से हम लोग दिल्ली की गहमागहमी देखते हुए कालका देवी के दर्शन करने गए।

बड़ा हिं भव्य मंदिर था। सिद्ध पीठ कहा जाता है। अपने लिए तो भगवान से आज तक हमने कुछ नहीं मांगा पर आज पहली बार अपने बच्चों के लिए आंचल फैला रही थी। मन ही मन सोच रही थी कि इतनी भीड़ में मां तक मेरी पुकार पहुंचेगी भी या नहीं। हर कोई माँ माँ पुकार रहा था। उन स्वरों में पता नहीं मेरी आवाज कहां दब जाएगी ? किसे पता? मंदिर के भीतर वाले द्वार पर एक काला कुत्ता बैठा था।

मैं चौंक उठी। ऐसा कैसे? पर हर कोई बोलने लगा यह भैरव बम है। मैं भी मन ही मन नतमस्तक हो गई। वहां से निकलकर हम लोग बिड़ला मंदिर आ गए। बाहर के दरवाजे पर लिखा था, जो लोग मेंटली एवं फिजिकली प्योर होन एवं प्योरली ड्रेस्ड हों वही अंदर जाए। और हम सब श्रद्धा और आदर से विनीत हो गए। मगर व्यवस्था की उस अव्यवस्था को देख सोचने लगी कि कितने लोग इतने परिशुद्ध होंगे।

लक्ष्मी नारायण की भव्य प्रतिमा के सामने हम संपूर्ण आत्मा के साथ नतमस्तक हो गए। गीता मंदिर में भगवान कृष्ण की भव्य मूर्ति थी, और भी कृष्ण की छोटी-छोटी प्रतिमाएं थी और चारों तरफ स्वच्छ निर्मल दर्पण लगे थे। यानी जित देखूं तित श्याममयी और उनके बीच भटकती मेरी आत्मा।

आत्मा परमात्मा कितने पास कितने दूर? 12:00 बजे दोपहर में राजू से भी मिलना था। हिंदू कॉलेज हॉस्टल लाल-लाल ईंट से बना अंग्रेजी हुकूमत काल की कारीगरी, अपने आप में भव्यता लिए विशाल इमारतें। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि अंग्रेज काल की सभी चीजें सशक्त और चारित्रिक उत्कर्ष से भरी होती थी। अगर ऐसा नहीं होता तो गांधीजी के अहिंसा आंदोलन के समक्ष झुक कर वो हिंदुस्तान छोड़ने पर विवश नहीं होता। पर इनके साथ और भी बहुत कारण थे।

हां अंग्रेजों का एक सबसे बड़ा दुर्गुण था-- डिवाइड एंड रूल। जिसे हम लोगों ने बखुबी सीख लिया और आज तक उसी को राजनीति मान बैठे हैं। इतना ही नहीं भले ही वह राजनीतिक सामाजिक एवं पारिवारिक क्षेत्र ही क्यों ना हो हम उसे हर जगह अमल में लाते हैं। बेटे के हॉस्टल जाते हैं हुए विचित्र रोमांच हो रहा था। रास्ते में अमरेंद्र मिल गया। राजू के कमरे में ताला लगा था। हम इधर उधर बरामदे में टहलने लगे। इतने में एक छात्र ने आकर पूछा आप लोग राजीव भैया को ढूंढ रहे हो क्या ? वह अभी परीक्षा देकर नहीं आया है। अब आता ही होगा और वह उड़िया लड़का जो राजू का दोस्त था हम सबको अपने कमरे में ले जाकर बैठाया। हमने उससे पूछा मदद से पूरी जाने में कितना वक्त लगेगा? उसमें बड़ी निश्छलता से कहा, बरगढ़ से पूरी डायरेक्ट बस जाती है। बहुत ही अच्छी बस है। मात्र 15 घंटे में आपको पहुंचा देगी।

मात्र 15 घंटा सुनकर हम लोग हंस पड़े। उसने सुराही से पानी निकालकर हम सब को पिलाया। मगर सिर्फ 15 घंटा बोल कर उसने सच में हम सब को पानी पिला दिया था। राजू संजय के साथ आ गया था। उसकी छोटी सी कोठरी बड़े करीने से सजी हुई थी। जिसमें वह अपने पंजाबी दोस्त चावला के साथ रहता था। भूख प्यास से बेहाल राजू के साथ शाम को घर आ गए।

दिल्ली की जलती तेज धूप का मुझ पर कोई असर नहीं हो रहा था। शायद मेरे अंतर का ताप उससे अधिक था। हां शिप्रा आदि सभी के प्यार और आदर की छाया में मन शांत हो गया और बेसुध होकर मैं लेट गई।

दूसरे दिन वन्दना की परीक्षा थी 9:00 बजे सुबह। हम लोग शिवकुमार की गाड़ी से ही सुबह 7:00 बजे ही घर से निकल गये। रास्ते में नेहरू जी की समाधि "शांतिवन" दिखाई दिया। ऊंचे ऊंचे पेड़ों पर सघन छायादार वृक्ष, गोलाकार में फैला दूब का मखमली गलीचा। धरती पर फैला देखकर किसी कवि की पंक्तियां याद आ गई-- " हरित दूबी पर बैसी प्रिया संग निशि वासर ज्यों होइत एजोरिया ...." अचानक ही अपने आप पर हंसी आ जाती है। मरणपर्व पर जीवन गीत ? यही तो विरोधाभास तो जीवन का। और उसी ताप में शीतल चांदनी की स्पर्शानुभूति भी। और वहीं पर मोती के लाल जवाहर चैन की नींद सो रहे थे। जवाहर राजनेता से बढ़कर साहित्यकार थे। उनकी राजनीतिक आधारशिला अपनी भावुकता, कोमलता, संवेदनशीलता थी ना कि धोखाधड़ी, दोहरा व्यक्तित्व अथवा स्वार्थ। वो ऐतिहासिक सांस्कृतिक गरिमा से ओतप्रोत थे। उनका भाषण मात्र आडंबर नहीं था ,बल्कि श्रोताओं के अंतर की गहराई में उतरकर उनके हृदय को स्पर्श करता था। मानव मोहित सम्मोहित हो जाता था। शब्दों का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है यह उनके कथन से स्पष्ट परिलक्षित होता था। हंसते गुलाब का फूल उनके जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण का प्रतीक था।

और आज यही जवाहर इतिहास का एक परिच्छेद बन शांतिवन निश्चिंत, निर्द्वंन्द पड़े थे। "शांतिवन" नाम कितना सार्थक है। मेरा मन कह रहा था कि यदि 1 महीने तक में प्रकृति की इस गोद में बैठकर साहित्य सृजन करूं तो एक अनुपम पुस्तक का सृजन निश्चित रूप से कर लूंगी। उस शांतिवन में प्रेरणा थी, संस्कृति थी, भावनाओं के चिंतन का प्रवाह.....

बंगाल में संजय का समाधि स्थल था। शांति के विपरीत अशांत सागर जैसा ज्वार भाटा से भरा। एक दुर्द्धर्ष अग्नि श्लाका प्रज्जवलित होकर भक्क बुझ गया और फिर राजघाट की प्राकृतिक वैभव संपदा या लकुटी कमरिया पर अंग्रेज शासन से अहिंसा के बल पर मुक्ति दिलाने वाला सन्यासी महात्मा गांधी भारत की गरीबी को देखते हुए बैरिस्टर गाधी स्वयं एक गरीब का जीवन जीने लगे। गांधी जी ने देश को आजाद करवाया बिना किसी कुर्सी के लालच के।

मगर फिर भी मन मे एक कचोट सी करवट लेती है। गांधीजी अपने जीवन काल में अमीर गरीब दोनों वर्ग की दीवार तोड़ सकते थे, फिर यह अहंकार आज अपने शिखर पर कुरसी की लालच में पीढ़ी दर पीढ़ी लोकतंत्र की आड़ में राजतंत्र का खेल नहीं कर पाता। उस समय राष्ट्रपति,प्रधानमंत्री,मंत्री और सारे पदाधिकारी अपना अपना वेतन बराबर बराबर बांट सकते थे।

राष्ट्रपति भवन के विशाल,विस्तृत परिधि में एक अकेले राष्ट्रपति के अलावा मंत्रिमंडल वहीं रहता,तो कितने घर, कितने बंगले और कितनी सारी जनता के लिए सर्वसुलभ हो सकता था। तब प्रत्येक कुटिया में आलोक लोक सजा होता। आज कुरसी खानदानी संपत्ति नहीं होती। गरीब से गरीब जनता के हृदय में स्वतंत्रता की गरिमा का बोध होता।

विचारों के जाल में उलझी पिंकी को सेंटर पर टेस्ट के लिए उतारा और फिर परीक्षोपरांत लाल किला देखने चल पड़े। जीवंत इतिहास की साक्षी लाल किले की ईंट ईंट मे रानी महारानी के वैभव विलास की झलक मिल रही थी। शाही हम्माम के कमलदल पर रानी बैठती होंगी। फब्बारा जैसे यमुना की जल धारा उनके अंग प्रत्यंग को सुवासित सिक्त करता होगा। दीवाने खास में एक शिलालेख जिस पर फारसी में लिखा था---

"अगर फिरदौस बररूए जमीन अस्त

हमीन अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त ।"

अर्थात् यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यही है ,यही है, यही है। अंतःपुर के जालीदार खिड़कियों से तन्वंगी यमुना की नीली जलधारा लाल किले की कमर में मेखला जैसा प्रतीत हो रहा था। दिल्ली का लाल किला राजा महाराजाओं का वैभव राजस्थल, उस पर गणतंत्र दिवस पर तिरंगा फहराया जाता है। मगर ठीक उसके बगल में मीलों दूर तक फैली हुई झुग्गी झोपड़ियों की दयनीय स्थिति दिल को हिला कर रख देती है।

गंदी नालियों की सरांध झेलते,चिथड़ों मे लिपटे अधनंगे से स्वतंत्र देश के भावी कर्णधार बच्चे सूने आकाश की तरफ सूनी आंखों और खाली पेट निहारते रहते हैं। "बड़े भाग मानुष तन पाना" की यही कीड़े मकोड़ों से जिंदगी जीने के लिए। उनका दिल बंजर बन चुका है। ऐसे में किसी भी आकांक्षाओं का अंकुर भला कैसे पनप पाएगा। कूड़ा कचरा बेचकर क्षुधा शांत करने वाले लोग स्वयं हीं कचरा बन बैठे हैं।

किस में हिम्मत है उनके भाग्य को बदलने की ? भला कौन सा आरक्षण इनके जीवन में नव-विहान ला पाएगा? नहीं-नहीं गरीब हमेशा गरीब ही रहेंगे? और ये अमीर और अमीर और अमीर बनते जाएंगे। एक तरफ दिल्ली का संसद

भवन, 350 कमरों का राष्ट्रपति भवन, प्रधानमंत्री निवास, ढेरों अट्टालिकाएं और उधर दूसरी तरफ दीन हीन का हाहाकार। दिल्ली का जीवन वैभव विलास रूदन हास्य की सामानान्तर पटरी पर है। किसने यह वर्ग भेद बनाया?

मानव या स्वयं ईश्वर ने? जो भी हो मगर रहते सभी हैं दिल्ली की आनंद तरंग मे तरंगित होते हुए। क्योंकि वह दिल्ली वाले हैं चाहे अमीर हो या गरीब।

जामा मस्जिद को देखकर अपने आप ही हम नतमस्तक हो जाते हैं। यहां पर निर्गुण निराकार ब्रह्म का वास है जो खुदा के नाम से प्रसिद्ध है। शबेबारात मध्य रात्रि में हमने भी कई बार अगरबत्तियाँ जलाकर खुदा की बंदगी में बैठे रहते थे। कितना अर्थ पूर्ण अर्थ है मुस्लम हो इमान जिसका -- मुसलमान। संपूर्ण सृष्टि एक अदृश्य शक्ति से संचालित होती है। समस्त ब्रह्मांड में एक एनर्जी एक फोर्स व्याप्त है, जिसे हम देख नहीं सकते मगर उस अदृश्य शक्ति से एक नियत समय पर चांद उगता है, सूर्य उगता है। प्रकृति का कण कण एक नियम पर चलता है।

उस अदृश्य शक्ति को ही कोई भगवान कहता हैं ,कोई खुदा तो, कोई ईसा तो, कोई पैगंबर। ठीक वैसे ही जैसे किसी लाडले बच्चे को मां राजू करती है, पिता राज, दादा बंटी, नाना सनी। ईश्वर ने तो सिर्फ एक जाति को जन्म दिया है ,"मानव जाति" और एक ही गुण खेती। मानवता का इंसानियत का। मगर सभ्यता के विकास के साथ साथ मानव की सोंच सीमा संकीर्ण होती चली गई।

हिंदू मुसलमान सिख इसाई आदि कितने ही रूपों में मानव बंटता रहा, धरती बंटी, मगर चिरंतन काल से मानव मात्र के दिल में प्रेम, ममता, मोह ,वात्सल्य, काम ,क्रोध, मद ,लोभ आदि सारे भाव विद्यमान रहे हैं। ऐसा नहीं है कि किसी हिंदू का खून लाल और मुसलमान का नीला हो। जिस तरह एक मुस्लिम मां अपने बच्चों से प्यार करती है उसी तरह एक हिंदू मां भी करती है। हिंदी साहित्य में चमकते कबीर, जायसी ,रहीम ,रसखान आदि सभी अपनी लेखनी से अपने हृदय की यही चिरंतन भाव धारा प्रवाहित किया जो आज तक नूतन और सर्वप्रिय है।

मानव मूल्य की जो सीमा उन्होंने निर्धारित की आज के संदर्भ में वह उतना ही सच है जितना कि सूरज चांद। इस देश को स्वतंत्र करवाने में जो खून की बैतरणी पार करनी पड़ी उसमे हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई सब का रक्त मिला हुआ था। सब ने मिलकर देश को इस लिए स्वतंत्र किया था कि भारत भूमि पर रहने वाले सभी धर्म संप्रदाय के लोग शांत और अखंड जीवन जी सकें। मगर आज उनकी तपस्या उनका बलिदान हम भूल जाए तो हमारी संस्कृति मां सीता की तरह पाताल में समाहित हो जाएगी। हमारी संस्कृति वास्तव में सीता ही तो है जो हमारी अवमानना सहन नहीं कर सकती।

राम और रहीम का दिया संस्कार आज हिंदुस्तान के जन जन का जीवन मूल्य बन चुका है। टाइम्स ऑफ इंडिया के कार्यालय जाती हूँ तो वहां राजेंद्र अवस्थी जी, शीला झुनझुनवाला एवं गौरीशंकर राजहंस जी से एक साथ भेंट हो जाता है। हमारी डायरी में लिखी पंक्तियां जैसे दिल्ली यात्रा को सफल बना गयी। शैल जी बोलें,- शेफालिका जी निष्ठा को जीवन का धर्म रखें।

राजेंद्र अवस्थी जी पूछने लगें, आपको कादाम्मिबनी का कालचिंतन कैसा लगता है?

सत्य ही काल चिंतन मुझे बड़ा अच्छा लगता है और उसकी अच्छाई की व्याख्या की मैंने । वह बड़े खुश हुए और मेरी डायरी पर शुभकामनाओं के साथ लिखा आप साहित्य की दुनिया में अपना अलग अस्तित्व बनाए।

मैं सोचने लगी थी और वर्मा जी भी मुझे मुझसे यही बात कहते हैं। जब वर्तमान युग में कुंठा संत्रास गांव घर की वास्तविकता उजागर करती रचनाएं देखते हूँ तो अपनी कृतियां निरर्थक प्रतीत होती है। परंतु वर्मा जी कहते हैं सभी लिखते हैं, पर आप जो लिखते हो वह कोई नहीं लिखता। भावनाओं में ऐसा विपुल भंडार कहां है।

फिर मुझे जैसे संतोष मिल जाता है और मैं आनंद से भर जाती हूं। आनंद मन की एक ऐसी वस्तु है जिसे मनुष्य आत्मा के रस में डूब कर इसका रसास्वादन करता है, भोगता है, दुख सुख,प्रकाश अंधकार हास्य रूदन आदि ईश्वर का दिया इस जीवन का वरदान है, मगर उसे ग्रहण करता है अपने मन से। जैसे आधा गिलास पानी देख कर कोई बोलता है आधा भरा है और कोई कहता है आधा खाली है। यह देखने का अपना-अपना दृष्टिकोण होता है उसी तरह जीवन जीने का भी अपना अपना ढंग होता है। तो फिर क्या अमीर और क्या गरीब? दिल्ली सबके लिए एक आनंद भरा दिल रखता है। स्वतंत्रता के 40 वर्ष बीत चुके हैं हम स्वतंत्र हैं मगर किस अर्थ में? स्वतंत्रता की परिभाषा क्या परिणति रही? 26 जनवरी 15 अगस्त के दिन दिल्ली में खूब पतंग बाजी होती है। हजार हजार रुपये लोग स्वतंत्रता के उल्लास में सवाहा कर देतें हैं। गरीब भी इस उल्लास में पीछे नहीं रहते। देश के अन्य भागों में उल्लास कहां स्वतंत्रता का? सही अर्थों में आजादी की खुशी दिल्ली तक ही सीमित रह गया है। सोंचती हूं दिल्ली के हीं अनंत गगन में हजार हजार लाख-लाख स्वर और भक्काटा..... भक्काटा.....??

पाषाण पथ

एक त्रिपेक्षण होता है, शिवमंदिर के चारों ओर, और एक शिवलिंग के चारों और। मेरा ये शायद भारत के आधे हिस्से का यानि शिवलिंग का त्रिपेक्षण था।

सहरसा से पटना, पटना से दिल्ली, दिल्ली से उड़ीसा, उड़ीसा से टाटा, टाटा से पटना और पुनः जिस तरफ से मंदिर में प्रवेश मिला उसी रास्ते से एक्जिट यानिं पटना से सहरसा की यात्रा थी भूतपूर्व या कि अभूतपूर्व। 2 जून 83 को दिल्ली से। बरगढ़ के लिए कलिंग एक्सप्रेस विदा हुए हम दोनों मैं और वर्माजी

आज सोचती हूँ कैसे ये त्रिपेक्षण संभव हुआ।

तब........... युवावस्था का उन्माद, युवा खून की गर्मी, नई नई चीजें देखने का शौक नई नई जगहों का सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश जानने की अभिलाषा और कवि सम्मेलन का लालच भी कम नहीं था।

कलिंग एक्सप्रेस से उड़ीसा की यात्रा पत्थर के रास्ते थे- पलवल, मथुरा, आगरा कैंट, गवालियर, झांसी, खुजराहो आदि ऐतिहासिक स्थल की झांकी सब आँखों के आगे नाच उठती थी, खासकर ताजमहल की एक झलक सूर्य के प्रखर किरण में दमकती सी फलक जैसे हम लोगों को विस्मृति से स्मृति में ले आयी ....

सहरसा में अपना मकान बनवा रही थी, खूब पसीने से बना वो मकान और जब वर्मा जी आगे की छत पर अपना घर का नामकरण करके खुद से लिखने लगे 'शेफालिका' तो पूरे मुहल्ले वाले आकर जमा हो गए थे मेरे घर के आगे और सब के मुँह से एक ही बात निकल रही थी ताजमहल तो मुमताज के मरने के बाद बना था मगर वर्मा जी ने तो आपके जीवन काल में ही 'शेफालिका' बना दिया और मैं शरमा कर अन्दर भाग गई थी।

इन्ही चित्र-विचित्रों में लगी गाड़ी में बैठी बैठी ऊब गई थी में। मन में आया कि राउरकेला में गाडी से उतर जाऊँ और वहीं रहने वाली अपनी छोटी बहन मृणालिका से मिल आऊँ फिर मन को एक डर ने आ घेरा कि ऐसे अचानक उसके घर बिना बताए जाऊँ और वो लोग घर पर न मिले तो फिर हम लोग इस पत्थर के रास्ते पर चलकर सिर धुनते।

हाँ और ना के अनिश्चितता में हम लोग झरसुगुडा पहुँच गए। वर्मा जी ने अचानक से राउरकेला का एक्सटेशन टिकट करवा लिया।

सिर से एक भारी बोझ सा उतर गया। लगातार ट्रेन में बैठे बैठे उकताहट सी होने लगी थी। भीतर ही भीतर पागल जैसी मनोदशा हो गई थी, मन करता था कि अब टेªन से कहीं कूद जाएँ तो इस कारागार से मुक्ति मिले। गाडी 2-3 घंटे बाद किसी स्टेशन पर रूकती और फिर मिनट में ही खुल जाती थी।

झरसुगुडा के बाद मैं मुँह हाथ धोने गई, पटना से दिल्ली और दिल्ली से झरसुगुडा तक हमें रास्ते में कही भी दातुन नहीं मिला था, मैंने आज तक कभी भी ब्रश और पेस्ट से मुँह नहीं धोया था मगर दिल्ली मंे राजू ने मेरे लिए ब्रश रख दिया था। थक हार के ब्रश निकाल कर मैंने वर्मा जी से पूछा कि ब्रश से मुँह कैसे धोते है? गाड़ी के हिचकोले सें गंवार सी मैने ंकिसी तरह ब्रश करना शुरू ही किया था कि अचानक से मुँह से खून निकलने लगा बड़ा ही विचित्र अनुभव था, सच कहूँ तो इस नये अनुभव पर मैं कई पेज लिख सकती हूँ।

अचानक ही आँखे आकाश की ओर उठी तो चौंक पड़ी आकाश का एक टुकड़ा लाल-लाल शोलों सा दहक रहा था आज तक हमने आकाश का ये रंग नही देख था। मगर तुरंत ही ध्यान आया कि ये फेक्ट्रियों वाला क्षेत्र था जहाँ पर इस पत्थर के शहर से लाल-लाल ज्वालामुखी का लावा फूटता है। टेंम्पू में बैठकर सेक्टर दो कि तरफ बढे जा रहे थे हमें पता था कि मृणलिका यानि अंजु अभी राउरकेला में नही है पर इसका कोई अफसोस भी नही था मगर किसी तरह पाहुन विजय बाबू मिल जाए इसके लिए बैचेन जरूर थी। रास्ते भर उन पत्थर के रास्तो को देखकर लगा कि इस पत्थर के देश में मेरी नन्ही और कोमल बहन अंजु कैसे रहती होगी। टेंम्पो राउरकेला शहर को छोडकर पहाडों के बीच से गुजर रहा था, पहाडों के किनारे बसा टाएनशिप देखकर दिल खुश हो गया अब मन में एक सूकून सा था कि अंजु कितनी अच्छी जगह प्रकृति के बीच में रहती है। विजयबाबू के क्वार्टर के पास पहुँचकर देखती हूँ कि गेट पर ताला लटक रहा है घरों में लटके ताले जैसे हमारा उपहास कर रहे थे ऐ परिश्रान्त यात्री! मेरे सूने घर में आप लोगों को शरण देने वाला कोई नहीं है। मन अचानक से खिन्न हो उठा था, थकान भी हम लोगो से लिपटे-लिपटे खुद थक चुकी थी तभी एक श्यांमाँगी उछलती कूदती हमारे पास आकर बोली कि दीदी यहाँ नही है। पता है! हमने कहा और पूछा तुम्हारे साहब कहाँ है? वो तो फैक्टरी गये है उसने कहा तब तक बगल से एक महिला निकलकर बोली आप लोग कर्णजी को खोज रही है? मैं दास बाबू को बता देती हूँ वो तुरंत खबर दे देगें। जब तक विजय बाबू आते तब तकं हम कौशल जी के आतिथ्य में रहे और उस दिन हम लोग अंजु की गृहस्ती का एक अंग बन गयें थे। अंजु नही थी मगर उसकी उपस्थिति का एहसास घर के कण कण में विद्यमान था विजयबाबू तो इतने खुश थे जैसे चाँद को पा लिया मगर वहाँ की वो गरमी बगल में पहाड़ियों की छाती से आग की लपटंे निकलते देख मेरी मनोदशा - क्या पत्थर के श्याम शिलाओं के अंदर में इतनी आग होती है? सच में प्रकृति बहुत रहस्यमय हैं कार्य कारण के संबन्ध का अन्वेषण बहुत ही दुष्कर है और यही पकृति की प्रतिकृति मानव का स्वाभाव है जो इतना दुर्बोध इतना अगम्य हैं। शाम को गायत्री मंदिर दर्शन के लिए गई पीत परिधान में आवेष्टित माता की श्वेत प्रतिमा आज भी मेरे मन मानस में वैसे ही विराजमान है। चार तारीख को सुबह छह बजे हम लोग बरगढ रोड पर उतर गये। छोटा स्टेशन होने के कारण दूर-दूर तक कोई दिखाई नही दे रहा था लगा जैसे हम पता नही कहाँ आ गए हैं? वर्माजी का पारा गरम हो चुका था टाउन होस्टल स्टेशन से तीन चार किलो मीटर दूर था जहाँ पर सम्मेलन स्थल था बरगढ शहर पत्थरों से भरा बहुत बड़ा शहर था। होटल ओरिएण्टल का दो नम्बर सूट हम लोगों के लिए पहले ही रिजर्व रखा गया था। एक दुबला पतला साँवला सा लडका आकर माफी माँगने लगा उसने कहा हमें बहुत खेद है कि आप लोगों को इतनी परेशानी हुई पर आपके पत्रानुसार आपको कल दोपहर ही हम लोग बहुत देर तक स्टेशन पर ढूढते रहे, सच में गलती तो हम लोगों की ही थी क्योंकि झरसूगुडा में ही हम रास्ते बदलकर राउरकेला चले गये थे। होटल ओरिएंटल एक विशाल एवं भव्य होटल था। हमने नहाधोकर जलपान किया, अच्छी आवभगत हुई हमारें स्वागत में समिति के सदस्य पानी की तरंगो से लहरा रहे थे। प्रसिद्ध उड़िया कवि अश्विनी मिश्रा, जो वहाँ के वी डी ओ थे आकर हम लोगों से हमारी परेशानी के लिए माँफी माँगी।

बारह बजे उद्घाटन समारोह था। गरमी इतनी कि होटल के बिस्तर तक तप रहे थें हम लोगों ने ऐसी गरमी कभी नही झेली थी। वर्माजी थके हुए थे इसलिए उद्घाटन समारोह में नही जाकर वही आराम करने लगे। कार लगी थी प्रो0 अशोक मुझे लेकर केनेल रेस्टहाउस गए जहाँ कलकता में आयोजित पोएट्स वर्कशीप में काम कर रहें पूर्व परिचित कवि राजेन्द्र पाँधा, प्रो0 हरिप्रसाद परीच्छपटनायक, अस्विनी कुमार मिश्रा, आर के मधुवीर आदि अनेको कवियों से मिली परिचित मुस्कानों का आदान प्रदान हुआ जलती दोपहर सूर्यका तप्त यौवन, प्रखर किरणों के बीच उद्घाटन समारोह चल रहा था। मन गरमी से पिघले मोम की तरह पिघलाकर हदय को कंुठित कर रहा था। जैसे ही सामने

दृष्टि पड़ी मन आँगन जगमगा उठा कवि सम्मेलन का बड़ा सा बैनर टँगा था। मन अचानक हर्ष से भर उठा छह भाषाओं के कवि इसमे भाग ले रहे थे जिनके नाम पहले मैथिली फिर आसामी, मणिपुरी, बंगाली, हिन्दी और उड़िया में लिखी हमारी मैथिली बहुत प्यारी लग रही थी विल्कुल ऐसे जैसे प्रेमी को अपनी प्रेमिका से अचानक साक्षात्कार हो गया हो वही रोमान्चक मेरी स्थिति थी, ज्ञात हुआ कि बिहार से मै अकेली थी यानि मैथिली सिर्फ मेरे ही हाथों में थी और मै मैथिली को अपने अंक में भरते हुए फुस फुसाई घबराओ मत उड़ीसा के इस कार्यक्रम में आपको सर्वोच्च स्थान मिलेगा मै आपको स्वयं मुकुट पहना कर ही यहाँ से विदा लूँगी और सच ही शाम को दूसरी मीटिंग के दौरान जब मैने अपने विचार सब के सामने रखें कि सभी वक्ता अपनी भाषा बोलेंगे जिससे हम एक दूसरे की भाषा को समझ सके व नही समझने का भी आनन्द ले तो सबने सहर्ष स्वीकारा।

बरगढ की स्याह भरी शाम मगर जलती दोपहर से कम नही थी। हवा जैसे नही बहने का प्रण किये बैठी थी मानिनी नायिका की तरह रूठी थी। लोग कैसे जीते है इस पत्थर की नगरी में! उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री जी शाम के सेमिनार के अध्यक्ष थे। संचालन सबलपुर रेडियोस्टेशन के प्रोगा्राम एक्जीक्यूटिव अभयशंकर पाँधा कर रहे थे। बैनर में टँगे नाम के अनुसार सबसे पहले मैथिली के अभिभाषण के लिए मेरे नाम की उद्घोषना हुई और मै मैथिली को लेकर पूरे आत्मविश्वास के साथ मंच पर आई। सबसे पहले अश्विनी जी को धन्यवाद दिया मैथिली भाषा सुनते ही पूरे पांडाल में एक चकम, एक खुशी की लहर सी व्याप्त हो गई हाटेस्ट स्टेट हाटेस्ट दिन’ और उस पर बारह बजे की तपती धूप जलता हुआ सूरज सर पर ऐसे हालात में शामियाने के नीचे बैठकर हम लोगांे ने बातें क्या की तो साहित्य काव्य की, कितना विरोधाभाषा है। कविता शीतल चाँदनी की भाषा है, कोमलता मृदुता मगर हम लोग तीक्ष्ण ताप के मध्य कविता की बातें करते थे।यही आज कल की कविता कुंठा आक्रोश हाहाकार के मध्य कवि जीवन जीते है तो चाँदनी कहाँ धूप ही धूप ताप ही ताप! पुनः भाषण को आगे बढाते हुए मैथिली साहित्य के कवि रचनाकारों की कविता का गुण बखानते हुए बोली जिस तरह कोई यज्ञ या अनुष्ठान बिना महिला के संपन्न नहीं हो सकता उसी तरह कोई साहित्य तब तक संपूर्ण नहीं होता जब तक किसी महिला साहित्यकार का योगदान नहीं होता और उसके बाद मै विस्तारपूर्वक महिला रचनाकारों के नाम बीस पच्चीस मिनट के वक्तव्य के बाद तालियों के गूंज के साथ ही मै मंच से नीचे आई। राजेन्द्र पाँधा आई ए एस बोल उठे बहुत अच्छा शेफालिका जी और ये देखकर तो मन और भी हर्षित हो उठा जब कलकत्ता में आयोजित पोएटस वर्कशाप के बहुत सारे कवियों से मैं चारों तरफ से घिरी खड़ी थी। मैथिली विजयी थी अपराजेय थी तालियों वाह वाही और नई आशाओं नए स्पंदन की सफल संरचना लिए ब्यूटिफुल एक्सीलेंट आदि विदेशी प्यार भी मिला। वर्मा जी स्वयं गद् गद् थे। मगर मेरे हदय में मात्र मैथिली थी, मैथिली की गारिमा थी। अभय पांधा ने मेरे दिए गए भाषण का पहले उड़िया फिर अंग्रजी और अंत में हिन्दी में अनुवाद किया। पुनः मणिपुर, आसाम और उड़िसा के वक्ताओं का भाषण चला। उड़िसा कवि भाषण के मध्य अंग्रेजी में बोले शेफालिका जी आपने कहा कि महिला साहित्यकारों की कमी मैथिली में नहीं है स्त्री पुरूष के योगदान से यज्ञ पूरा होता है। मैं सब मानता हूँ हमारे उड़िया साहित्य में भी महिला साहित्यकारों की कमी नहीं है। मगर महिलाओं को कहीं आने जाने में दिक्कत होती है घर के झंझट व साथ आने वालो कि कमी जैसा की आपको भी हैं। मै पंडाल से ही चिल्ला पड़ी मेरे साथ वर्मा जी आए है। हाँ तो आपके साथ वर्माजी आये है मगर कई लोगांे को ऐसा संयोग नहीं मिलता है। मेरा मनपंख उड़ रहा था.........वो चहक रहा था क्योंकि सबके चेहरे पर मैथिली थी वो गर्व से मुस्कुरा रही थी। मैथिली मैथिली सारी भाषाएँ मैथिली के अनुपम तेज के सम्मुख जैसे निष्प्रभ हो गई थी। अधर पर एक प्रश्न बार-बार आ कर नाच रहा था। मगर निकल नहीं रहा था। आप लोगों ने इतने भाषण दिए कवियांे के उल्लेख किये मगर किसी कवयित्री का कोई उल्लेख नहीं किया-ये सौतेला व्यवहार क्यों? क्या महिलाओं की चर्चा से आपके अंह को चोट पहुँचता हैं? या आप

छोटा महसूस करते हैं अपने आप को? जहाँ सम्मान का भाव होना चाहिए वहाँ इनसिक्योरिटी कंमलेक्स क्यों? गर्मी बहुत तेज थी और हवा बहुत कम, कैसे साँस लेते हैं यहँा के लोग और कैसे जिते हैं? उड़िया कवियों के दो ग्रुप थे एक आई ए एस अफसरों की और दूसरा प्रोफेसरों की कितना सौहार्द्र कितना प्रेम! रात के दस बजे रहे थे। मंच पर मणिपुरी कवि प्रो0 इबोमेहा सिंह का इम्फाल विश्वविद्यालय का भाषण चल रहा था अंग्रेजी में। दीपक मिश्राजी के साथ मैं और वर्माजी पंडाल से उठकर पार्क में आकर हवा ढूँढने लगे। आखिर वो छुपी कहाँ थी? दीपक जी को संबोधित कर मैंने कहा जानते हैं दीपक जी हमारे यहाँ जब हवा बंद हो जाती है तो एक लोक कविता पढी जाती हैं ''बगबहों बसात बग बहो बसात'' और कविता समाप्त होने पर हवा चलने लगती है। लोक कविता? दीपक जी चकित होकर बोल उठे ये लोक कविता क्या होती है? और हँसते हुए सुनाने लगी - मूसाक धोकड़ी मूसाक कान धोकड़ी-धोकड़ी हवा आन धोकड़ी सं बक बहार भेल नगरक लोक सुपुप्त परिगेल बक गेला कतय? कमलपुर, बैसला कथी पर - कनैलक गाछ पर, माछ कोन खेलथि - कबई, पानि कतय पीलैथ - काबेरी में।

इसी प्रकार क वर्ग से लेकर ह तक सारा फकरा पढ़ते हैं। और जब ह के पास आते हैं तब तक खूब तेज हवा चलने लगती हैं वशर्ते सारे गाँव का नाम ठीक व अक्षर अनुकूल हो। बहुत देर तक दीपकजी हँसते रहे। मंच पर प्रख्यात उड़िया कवि रवि सिंह का भाषण चल रहा था। उड़िया एक ऐसी भाषा है जिसके कवि को कोई पारिश्रमिक नही मिलता जबकि अन्य भाषाओं के कवियों की अच्छी कमाई हो जाती है। दीपक जी ने कहा कि इनको लोग आग बोलते है। रात के खाने में पुलाव मीट और तीन चार तरह की सब्जियाँ थीं। हम लोग नीचे बैठकर पत्तल पर खा रहे थे कि एक चौकाने वाली आवाज आई। हाँ हाँ अहाँक पात से दालि बहि रहल अछि। मैं चौंक उठी। बरगढ मैं मैथिली भाषी एक नवयुवक बाल्टी हाथ में लिए बोल रहा था। आप मैथिल हो? मैंने पूछा, हाँ मैं मैथिल हूँ, सीतामढ़ी मेरा घर है, यहाँ मैं बिजली विभाग में कार्यरत हूँ। आज आपका भाषण सुनकर मैथिली की याद आ गई। यहाँ चारों ओर उड़िया लोग उड़िया भाषा प्रकृति और पत्थर की गोद में बैठा बरगढ़ शहर उसमें अकेले एक मैथिल को देख हर्ष भी और विषाद भी हुआ पता नही कैसी अनुभूति इस लडके को होती होगी? कल 5 तारीख को दो मीटिंग में प्रोग्राम था आठ बजे स्थानीय कवियों की कविता पाठ और सात बजे शाम से आमंत्रित कवियों का कविता पाठ था। हम लोगों के बरगढ से जाने के लिए एक ही टेंशन थी रात साढ़े आठ बजे बोकारो मद्रास पूरी रात नींद नहीं आई कहाँ थी। अपने सहरसा और पटना से दूर कितने दूर अनजान शहर में

एक विचित्र अनुभूति का भाव था मन में। विशाल होटल। सारी सुविधाएँ बटन से संचालित। ठंडा गरम अण्डा आमलेट सब कुछ फ्री था पर नहीं फ्री था तो मेरा मन। दूसरे दिन 10 बजे कवि सम्मेलन शुरू हुआ। होटल से तैयार होकर कैनल रेस्ट हाउस कवि सम्मेलन स्थान हम लोग देर से पहुँच पाए थे। कवि सम्मेलन शुरू हो चुका था। पता चला कि मेरे जाने का प्रोग्राम सुनकर बाहर से आमंत्रित सारे कविगण अपने-अपने जाने का प्रोग्राम बना चुके थे। इसलिए स्थानीय व आमंत्रित कविता पाठ एक साथ हो रहा था। अभय पाधा पुनः मंच का संचालन कर रहे थे। उनके व्यक्तित्व में हिन्दी, अंग्रेजी, उड़िया, मैथिली सब भरा था। भव्य एवं प्रतिभासंपन्न देवी दास मिश्र स्थानीय कवि का कविता पाठ चल रहा था आशु कवि कहा जाता है उनको वो कविता लिखते नहीं बोलते हैं। सिगरेट के धुएँ से घिरी मै बैठी थी। कभी राजेन्द्रजी के अधर में सिगरेट तो कभी डा0 सौभाग्य मिश्र के होठों में तो कभी हरिप्रसाद जी के। विचित्र माहौल था वहाँ का। राजेन्द्र पाँधा अपनी कविता पाठ कर थे और अंग्रेजी में समझा भी रहे थे द इन्टायर वर्ल्ड इज डिवाइडेड इनटू टू कैंप्स वन व्हीच टू लव एण्ड द अदर व्हीच प्रीचेज ही ट्रेड आई एम फार लव। मनुष्य पर उसके नाम का असर अवश्य होता है। डा0 प्रसन्न मिश्रा गुलाबी शर्ट में हमेशा की तरह अपनी मुस्कान विखेर रहे थे। वो उड़िया सरकार की पत्रिका शिशु लेखा के

संपादक थे, साथ ही कटक कालेज में उड़िया के प्रोफेसर। प्रख्यात उड़िया कवि डा0 सौभाग्य मिश्रा के व्यक्तित्व से भाग्य की रेखा छलक-छलक सी रही थी सुने - पाखी उड़े जाय ना फड़फड़ करी।

पुनः उड़िया कवि नृसिहं प्रसाद त्रिपाठी रायपुर के असिस्टेंट इनकमटैक्स कमिश्नर अपनी कविता ''निजःस्थिति'' के साथ आए। अब मैथिली को अवसर मिला। मधुगंधी बसात के साथ मैं माइक पर आई। मैंने महसूस किया कि मैथिली सब के आनन पर स्मित रेखा के साथ थी। मैथिली गर्व से मुस्कुरा रही थी। मैथिली मैथिली सभी भाषाएँ मैथिली की अलौकिक आभा के समक्ष निष्प्रभ हो गई थी मैथिली की माधूर्य का कोई जोर नहीं। अंग्रेजी के प्रोफेसर हरिप्रसाद जी की बारी आई और उनका स्वर वातावरण में लहरा उठा सुन-सुन आगि बेर कुसुक लागे छे मते बारम्बार ईश्वर हसन्ते उड़िया कविता बड़ी होती है मगर प्रसन्न कुमार प्रतस्नी और एम एल ए आचार्य रजनीश के वेष में बहुत छोटी कविता पढ़े। चिलिका मणिपुर कवि इबोमेहा सिंह अपनी कविता देबोय देबोय (डान्स-डान्स) के साथ उपस्थित हुए और दूसरी कविता सुनाने की प्रार्थना कर सुनाया जस्ट जगन्नाथ एवरीथिंग डेसर्टेड डेड जगन्नाथ डेड जगन्नाथ गरम गरम हवा चल गरम गरम हवा चल रही थी। बीच बीच में पानी और कॅाफी का दौर भी चलता रहा। मगर मैंने एक विचित्र और सुन्दरतम स्थिति देखी। कवि सम्मेलन दस बजे दिन में शुरू हुआ और तीन बजे तक अनवरत चलता रहा। जन समूहों की उमड़ी भीड़ एकदम मंत्रमुग्ध होकर प्रत्येक कवि को उस तप्त ताप में सुन रहे थे। कवि सम्मेलन के लिए ये धैर्य, ये आतुरता उत्सुकता तपती धूप में बैठकर भूख प्यास भूलकर सुनते रहने की अधीरता इससे पहले हमने कभी नहीं देखा। एक अभूतपूर्व समा था। नमित हो हमने उन साहित्य प्रेमी सब के लिए मन में पूजा का भाव ले आई थी। तीन बजे सम्मेलन खत्म होने के बाद भोजन की व्यवस्था होने लगी। वैसे तो स्वागत समिति के सभी सदस्य बैच से सुसज्जित होकर सभी कार्याे में तत्पर थे ही, फिर भी जितने आमंत्रित कवि थे ज्यादातर आई ए एस ऑफीसर या कालेज के प्रोफेसर सभी अपने अपने आगे कुर्सियाँ खीच कर अपनी-अपनी पत्तल लेकर बैठ गए कोई घमण्ड अपनी पद प्रतिष्ठा को लेकर नही था। दाल-भात दो तरह की सब्जियाँ और बडे बडे रेहू मछली के पीस दही चीनी के साथ लग रहा था जैसे हम लोग मिथिला मे ही बैठकर भोजन कर रहे थे। वही प्रेम वही आग्रह वही अपेक्षाएँ थी। हरिप्रसाद जी ने वर्मा साहब से पूछा डोन्ट यू स्मोक जबाब मैंने दिया नो स्मोकिंग नो ड्रिकिंग वर्मा साहब का हाथ पकड़कर कहा देन यू हैव मेड हिज वाइफ मिजरेबुल। मुझे याद आ गया रात एक एकान्त कक्ष में हजारों रूपये की मादिरा पानी की तरह बह गया था। उनका दावा था कि बिना पिये कोई कविता नहीं लिख सकता। हरि जी बोले मेरी पत्नी मुझे नहीं पीने देती थी। मैंने उससे एक ही प्रश्न किया कि तुमने पोएट से शादी की तब मैंने कहा फिर मुझे पीने दो और जब तक मैं कवि हूँ तब तक पीने की आज्ञा मुझे मिल गई। कविता करने की इस विचित्र प्रक्रिया पर मुझे हँसी भी आ गई और कुछ सोचने को भी विवश हो गई।

पाँच बजे प्रो. अशोक चंदन उड़िया कवि होटल में आए और मुझे संबोधित कर कहा शेफालिका जी पाँच मिनट के लिए आप रेस्ट हाउस चलिए कुछ नवयुवक उड़िया कवि और छात्रगण आपका इंटरव्यू लेना चाहते है। पूरे दिन थककर आई थी, बैठे-बैठे भी कभी कभी हम थक जाते है, अलसाई सी जाने का मन नहीं हो रहा था, मगर वर्मा जी की एक डाँट में यहाँ आप आई हो इसलिए यहाँ के किसी भी कार्यक्रम में ना मत बोलो बोलकर खुद पलंग से दोस्ती कर ली और मै चंदन जी के साथ पुनः रेस्ट हाउस आ गई। वहाँ बहुत बडा मजमा लगा था। टेपरिकार्डर बीच में रखा था। बहस चल रही थी कविता का सृजन कैसे होता है? शेफालिका जी इस संदर्भ में आपका मन्तव्य क्या है या आप जैसे लिखती है वैसे उसको प्रकाशित करवा देती है? मैं उन लोगों की समस्या और बहस का कारण समझ चुकी थी। हमने कहा जिस प्रकार प्रसव पीडा के दौरान गाय छटपटाती है ठीक उसी तरह किसी रचना को रचते हुए रचनाकार छटपछाता है। संतान के जन्म के उपरांत जिस तरह माँ अपने शिशु को संवारने के लिए कभी उसके सिर कभी नाक

तो कभी होठ सहलाती संवारती रहती है वैसे ही रचनाकार भी अपनी रचना संवारता रहता है। कविता के जन्म के पश्चात उसको और सुन्दर और सुन्दर बनाने के लिए उसकी कँाट छँाट करता है। सारे खुश, विस्मित और मुग्ध हो रहे थे और मैं, खुशी और संतोष का अपरिमित खजाना लेकर वापस होटल आ गई। अभयशंकर पाधा बोले आपका भाषण संबलपुर रेडियो स्टेशन से बुधवार शाम आठ बजे प्रसारित होगा, आप अवश्य सुनना। विदा की बेल आ गई थी। स्वागत समिति के दोनों सदस्य सनत कुमार और अशोक महापात्र बी ए के परीक्षा फल के इंतजार मे थे। एक मिनट के लिए भी उन्होंने हमलोगों को अकेलापन महसूस नहीं होने दिया। हम लोग सामान के साथ कार की प्रतीक्षा में थे। सारे कवि वृन्द हमें घेरे हुए थे। बिहार बुलाने के आमंत्रण के लिए उत्सुक व पुनः आने का आग्रह। एक आत्मीयता के स्नेह रश्मि में बंध गई थी मैं। तब तक एक युवक पत्रिकाओं का पुलिंदा लेकर आया और बोला मैडम ये सोवेनीर प्रकासित हुआ है। इसमें आपकी मैथिली कविता का अंग्रेजी रूपान्तरण है। कितनी देर तक रोहिनी कान्त मुखर्जी सोवेनीर के संपादक मैथिली की प्रशंसा करते रहे और हम लोग उस प्रशंसा, उस भाव, उस उन्माद में डूबे बरगढ शहर को नमस्कार कर सबकी आत्मीयता में डूबे हदय में विलग होने का भाव लिए व्यथा वेदना लिए सनत कुमार व अशोक पात्र के साथ चल पडे स्टेशन की ओर। मैडम आप हमें पत्र लिखेगी न इतनी भीड़ के बाबजूद हम आप दोनो साथ ही बोल पडे। रात्रि के आठ बजने ही वाले थे। कार स्टेशन की तरफ भाग रही थी। हमने कहा हाँ अशोक पत्र तो मैं जरूर लिखँ्ाूगी, पर एक शर्त है कि आप मुझे मैडम नही दीदी बोलेगें। हाँ-हाँ अवश्य दीदी बोलँूगा। आपको हम लोग कभी नहीं भूलेगें दीदी कभी नही और मेरा मन टेªन की गति के साथ साथ भागता रहा। मणिपदम हाल ही में सहरसा के कवि मंच पर बोले थे शेफाली जी आपका मन सेमल के फूल की तरह उड़ता रहता ही जाता है। सच ही मेरा मन उड़ रहा था। उड़िया लोगांे के संस्कार पर आई ए एस हो या प्रोफेसर या प्रिन्सिपल हर कोई अपनी मातृभाषा उड़िया में ही बात करता है। कलकत्ता अधिवेशन में भी सभी बंगाली अपनी मातृभाषा बंगाली में ही बात करते हैं। इसलिए तो उड़िया और बंगला कितने गौरव, कितने अभिमान और कितने आत्मसम्मान के साथ हैं। मेरे मन में भी प्रतिबद्धता आई हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और मैथिली मातृभाषा अगर हम अपनी माँ का ही आदर नही कर पाए तो, इसलिए हम अपनी माँ का आदर करेगें तभी राष्ट्र का भी आदर कर पायेगें। जननी को आदर देकर जन्मभूमि को आदर देगें स्वराज के उपरांत भारत भाषा की दृष्टि से दो भागों में बंट गया। संविधान में है इंडिया दैट इज भारत यानि भारत के ऊपर इंडिया का राज है। अभी तक भारत जो शरीर से भारत है और मन से अंग्रेज। हम जीवन के प्रत्येक कार्यकलाप में एक भारतीय से अपेक्षा करते है कि वो कितना स्मार्टली अंग्रेजी बोल सकता है मगर हम कभी भी किसी साक्षातकार में ये देखने का प्रयास नहीं करते हैं कि वो कितने सुन्दर ढंग से धारा प्रवाह राष्ट्रभाषा बोल रहा है। और यही कारण है कि मातृभाषाओं को अभी तक संविधान में स्थान नहीं मिला है।

काल अजगर से मुक्ति १९८६

जिन बातों को मानव विस्मृत कर देना चाहता है वही बातें क्यों बार बार स्मृति पटल पर छेनी हथौरे जैसे चोट करता रहता है.

जीवन में चारों तरफ से शांति की सुमधुर अदृश्य कलनाद होता रहता है. ह्रदय के उल्लास से मानव बन्धनहीन हो जाता है, मन मयूर की तरह नृत्य करने लगता है. तभी किसी अज्ञात कोने से भयानक कालखण्ड बादल का एक टुकरा आहिस्ते आहिस्ते समस्त आकाश को ढक लेता है, किसी को भी कुछ जानने समझने से पहले, बिना कोई अवसर दिए. तब पता चलता है की मन मयूर क्यों नृत्य कर रहा था .

मानव जीवन स्वयं ही एक अनंत पथ की यात्रा कथा है क=जिसकी मंजिल अस्थि चर्ममय शरीर का अंत है, किन्तु मानव जीवन की कोई कोई यात्रा इतना दारुण इतना ममहित करनेवाला होता है की इसमें सिर्फ एक व=व्यक्ति नहीं वरण आस पास के समस्त परिवेश को प्रभावित कर देने की क्षमता होती है. कटिहार गौहाटी के ट्रेन में हम लोग बैठे थे , मेरी गोद में सर रखे साक्षात् परिणीता मेरी प्रथम पुत्री “भावना” निःचेष्ट परी थी .

सामने के बर्थ पर वर्माजी योग समाधी मुद्रा में लीन थे , राजू सामानों को सुव्यवस्थित कर रहा था . गाड़ी खुल चुकी थी – स्टेशन पर खरी भीड़ बिखड चुकी थी , अचानक की गाड़ी रुक गयी . मेरे डिब्बे के बाहर फिर से भीड़ इकठ्ठी हो गयी थी और वहां खड़े मेरे छोटे भाई “शरद” जो रेलवे अधिकारी हैं उसका चेहरा फक्क पड़ा हुआ था .

अचानक ही भावना घबरा कर चीखने लगी क्या हुआ ? गाड़ी क्यों रुक गई? हम लोग भी बहुत घबड़ा गए थे . “शरद ” जिसको हम लोग प्यार से सेंटू बोलते थे उसको बहुत सरे लोगों ने घेर रखा था ... डिब्रूगढ़ से खबर आई थी की प्रकाशजी का ब्लड सर्कुलेशन (रक्त प्रवाह) रुक गया था जिसके कारण डॉक्टर ने उन्हें तुरंत भेलोर ले जानेकी सलाह दी थी मगर पास में किसी अभिभावक के नहीं होने के कारण डॉक्टर असमंजस की स्थिति में पड़े हुए थे .

डिब्रूगढ़ भेलोर .... जैसे बार बार सर पर छेनी की तरह खट खट मारने लगा था .

मुझफफरपुर से मेरे समधीजी प्रकाश के पिताजी डिब्रूगढ़ के लिए रवाना हो चुके थे मगर इतनी जल्दी वहां पहुंचना बहुत मुश्किल काम था . भावना हाहाकार कर उठी , गाड़ी को तुरंत ही खोल दिया गया.सारे नार्थईस्ट रेलवे अधिकारी शरदकुमार मल्लिक के कारण इस विषय और परिश्थिति को लेकर कितने चिंतित हो उठे थे ,ऐसी परिश्थिति आने पर कोई भी समझ सकता है. मेरी आँखों के आगे जीवन और मृत्यु से जूझते मेरे दामाद का चेहरा बार बार उभर आता था और मैं विह्वल हो उठती थी , अपना संयम खोती जा रही थी .

ट्रेन से साथ साथ हिमालय की पंक्तिवध चोटियाँ भी भाग रही थी . मैं हाथ जोर कर हिमालय को प्रणाम कर प्रार्थना करने लगी – हे हिमालय की चोटियाँ आपके सघन अरण्य में कितने ऋषि मुनि अभी भी अनंत काल से तपस्या में लीन होंगे , हे देवराहा बाबा आप सब अभिभावक बनकर मेरे पुत्र के पास पहुँच जाइये . मेरा विकल ह्रदय अंतर्नाद कर उठा .

गोद में निःचेष्ट परी भावना पर दृष्टिपात हुआ – लाल लाल (लहठीयों) लाख की चूड़ियोंसे सजी मेरी कलाईयां, माथे पर बड़ी सी बिंदी देवी भगवती जैसा कांतिमय चेहरा, मैं टकटकी लगाये अपलक उसे निहारती रही – माँ गौरी जैसा

निर्मल अंतःकरण, गंगा जैसी पवन विचार धारा, कैलाश जैसा शुभ्र चरित्र, मान सरोवर जैसी करुण ऐसी बेटी का सुहाग सतत अखंड और अचल तो रहेगा ही .

सामने तपस्वी जैसे मनही मन दुर्गा पाठ करते वर्माजी पूरा कम्पार्टमेंट जैसे उनके साथ दुर्गापाठ में लीं हो गया था . ये असह्य वेदना के क्षण की अभिव्यक्ति करने की क्षमता क्या ? विश्व की किसी (लेखनी) कलम में थी ?

५ अगस्त १९८६ की रात हम लोग सहरसा में थे . पूरी रात किसी की आँखों में नींद नहीं थी. वर्माजी मंगलवार व्रत में थे . मैं खुद अब सहज ही कोई व्रत उपवास नहीं रखती हूँ , पेप्टिक अल्सर की मरीज होने के कारन प्रायः सोचती रहित हूँ कैसा व्रत कैसा उपवास ? मेरी सासु माँ इतना व्रत उपवास करती थी , पूजा अर्चना में अपना संपूर्ण जीवन उत्सर्ग कर चुकी थी , दानी ऐसी की अपने आगे की परोसी थल भी दूसरों को दे देती थी . लेकिन फिर भी ईश्वर ने उनके साथ अन्याय ही किया . युवती छोटे छोटे बच्चों वाली उनकी बेटी रेणु स्वर्ग सिधार गई. पुनः खुद वैधव्य का दंश झेलना पड़ा. फिर इन व्रत उपवास का क्या महत्व. मैं तो निर्गुण ब्रह्म की उपासक हूँ , ईश्वर का वास अपनी आत्मा में महसूस करती हूँ . मेरी आत्मा जितना पवित्र और जितना (निष्कलुष) निष्पाप रहेगा ईश्वर उतना ही मेरे समीप होंगे . मेरे कर्म जितने निःस्वार्थ होंगे मेरें जीवन उतना ही सदभाव से भरा होगा . मंदिर भी जाती हूँ थोड़ा चैन समेटने , चुपचाप मन के मैल को धोने , अपने आप को उत्सर्ग करने . दिन के ग्यारह बहे थे . फ़ोन की घंटी बज उठी . पटना से पापा का अर्जेंट कॉल था , पर बात नहीं हो सकी . तरह तरह की आशंकाओं से मन भर उठा था . घबराहट में दिल जोर जोर से धड़कने लगा था , डर गई थी पापा बेवजह तो कभी फ़ोन नहीं करते ? वो भी अर्जेंट ? गुड्डू से बोली हो सकता है तुम पटना से चातुर्दशी तिथि में चले हो इसलिए नानाजी कुशल क्षेम पुछने के लिए अर्जेंट कॉल किया हो . गुड्डू के चेहरे पर हल्कीमुस्कान बिखर गई . बोल पड़ा पिंटू मामा दिर्श्शूल में चले गए तो कुछ नहीं और मेरें लिए अर्जेंट कॉल ? बात तो ठीक ही थी . मेरा मन पीपल के पत्ते जैसे कांपने लगा . मन में तरह तरह की आशंकाएं घर कर रही थी .

इस कमरे से उस कमरे में घूम रही थी मैं . तरह तरह की आशंकाएं . पति और संतान में तो मेरे प्राण बसते हैं – वो क्या सोच रहे हैं? उनके दिल को कोई ठेस तो नहीं पहुंची? निरुदेश्य इन छोटी छोटी बातों को अत्यधिक महत्यपूर्ण मान मैं हमेशा यही सोचने में लगी रहती हूँ . शंशय , अस्तव्यस्तता उधेरबुन यही सब मेरे चारों ओर एक जाल की तरह उलझा रखा था .१० अगस्त को बनारस में राजू का साक्षात्कार (इंटरव्यू) था एयरफोर्स के लिए . मेरे कॉलेज में हरताल , वर्माजी कचहरी , गुड्डू स्कूल . राजू खाना खाकर मुझसे भी बोला मम्मी आप भी खा लीजिये – नहीं बेटा मुझे पता नहीं क्यों आज खाने का मन नहीं कर रहा है . तीन बजे फ़ोन की घंटी फिर घन घना उठी , पटना से डॉक्टर भाई का मन्नाजी का फ़ोन था – दीदी आसाम में पाहून प्रकाशजी का सीरियस अक्सिडेंट हो गया है , फ़ोन और टेलीग्राम जी . एड . एस . हॉस्टल में “सुकू” (भावना) के पास आया था “सेंड मिसेज नवीन इमिडीएटली”. उस समय सुकू जी . एड . एस . हॉस्टल में ऍम . ए की परीक्षा देने के लिए कह रही थी .

और उसके बाद की व्यथा कथा . कटिहार के लिए जानकी एक्सप्रेस सुबह थी . रात भर दुर्गा पाठ करती रही , रात भर घर के बहार कुत्ते रोते रहे , बारिश भी लगातार होती रही .

किस तरह हम लोग सेन्टू के पास पहुंचे , किस तरह सुकू को बेसुध हालत में पटना से कटिहार पहुँचाया गया , किस तरह अन्नू माँ बनकर सुकू को अपनी गोद में समेटे रही , किस तरह प्रकाश जी की माता – पिता को ये ह्रदय विदारक समाचार मिला , सब कुछ अपने आप ही आंसुओं का सागर नहीं महासागर बन गया , गाड़ी झटके के साथ रुक गई,

सिलिगुरी स्टेशन था – एक रेलवे स्टाफ दौड़ा आया और बोला वेर्माजी इसी में हैं , हम सभी जैसे एक साथ उछलकर खिड़की की ररफ जाने का प्रयास करने लगे . प्रकाशजी पहले से ठीक हैं , चिंता की कोई बात नहीं है , उसने बताया . रेलवे वाला खाना भी भेज दिया था – मैं किसी तरह एक दो कौर सुकू को खिलने का प्रयास की पर उसने कहा “नहीं मेरा मधुश्रावणी का व्रत चल रहा है, मैं प्याज-लहसुन नहीं खाती हूँ .” मैं उस प्रांजल सुहागिन बेटी से आँख भी नहीं मिला पाई . गाड़ी खुल गई , किसी तरह हम लोग ७ अगस्त सुबह कामाख्या स्टेशन पहुंचे – माता कामाख्या का दूर से ही दर्शन कर कुछ शक्ति का संचार हुआ . सेंटू का साथी रेलवे अधिकारी “रविप्रभात जी“ हम सब को अपने घर ले गए. वहां फिर फ़ोन से सूचना मिली की पाहून प्रकाश जी अब धीरे धीरे ठीक हो रहे हैं .

किसी किसी का जीवन ऐसा होता है जो सब से मिल और सबों का स्नेह पाने की आकांक्षा रखता है , सबके जीवन से संबद्ध होकर ही आगे बढ़ाना चाहता है. पर कुछ एक जीवन ऐसा भी होता है जो सबको अस्वीकारते हुए सिर्फ अपना अस्तित्व मुख्य मानकर आगे बढ़ने का प्रयास करता है , उसके समक्ष हम या आप कुछ भी नहीं वो खुद ही सबकुछ होते हैं . संसार में स्वयं प्रवृति वाले लोगों की संख्या ज्यादा है . मगर उत्तर – पूर्व रेलवे के कर्मचारी – पदाधिकारी गणों की सह – संवेध, परोपकारी स्वाभाव अपने आप में एक उदहारण था . जब सहरसा से ये आकस्मिक यात्रा आरंभ हुई हम लोगों के पास एक भी पैसा नहीं था . वकील का जीवन हमेशा आकाश वृत्ती के लिए जैसे टकटकी लगाये रहते हैं . उसे कोई वेतन नहीं मिलता वो तो सिर्फ दिमाग की कमाई खाते हैं . उसी फीस पर घर – परिवार , अतिथि सत्कार यानि जीवन का संपूर्ण क्रिया – कलाप उसी पर निर्‌भर और अगर कोई बिना फीस उससे काम ले तो घर के कितने ही बजट में करौती करनी परती है ये किसी दुसरे पेशे के लोग इसका अनुमान नहीं लगा सकते . उस पर से मेर्री छः संतानों का भरण पोषण पटना और दिल्ली की पढाई होस्टल का खर्च , बेटी की शादी भी हाल में ही की थी गुना भी साथ में , हर तरफ से जैसे हरी हुई , लुटी लुटी सी .

हम लोगों के बैंक बैलेंस में साहस और धैर्य के अलावा कुछ भी नहीं था . किसी तरह से राजू ने कुछ पैसों का इंतजाम किया , मुझे तो कुछ होश ही नहीं था . जिंदगी बहर भगवान परीक्षा ही लेते रहे . कटिहार में सेंन्टू ने हमलोगों के डिब्रूगढ़ का टिकट कटबा दिया था . सुकू की शादी में भी उसने मदद की थी . मगर जब कामाख्या में रविप्रभात से कुछ पैसे उधार लिए तो मन में थोड़ी रहत सी हुई , ऐसा दिन भी कभी आएगा सोचा न था .

वर्माजी पटना साइंस कॉलेज के मेधावी व ललितकला सम्पन्न फिजिक्स के छात्र थे, साथ साथ कानून की पढाई भी कर रहे थे . माइनिंग में कम्पीट करने के बाद भी छोड़कर पीछे हटना पड़ा क्योंकि बाबूजी ने कहा मेरा बीटा खान में नौकरी नहीं करेगा .

इम्पीरियल टोबेको कंपनी कलकत्ता में एडमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर में पदभार संभाला पर सूरा – सुंदरी, तथाकथित हाई सोसाइटी मझे पसंद नहीं आया, इन्होने समझाया बंगला, गाड़ी सब मिलेगा जेबरात से लड़ी रहोगी सारी सुख सुविधाएँ मिलेगी मगर मुझे वहां का वातावरण कुछ रास नहीं आया, तब मैं अर्थ का महत्व नहीं समझती थी . कल्पना में विचरती थी और कल्पना में ही जीती थी . मेरा मानना था नमक से रोटी खा लेंगे मगर चैन की जिंदगी जियेंगे और वर्माजी वकालत में आ गए .

बाबूजी चाहते थे की वी. डी. ओ. बने मगर इनको सरकारी नौकरी से वित्रष्ना सी थी . और तभी इन्होने मन ही मन में सपथ लिया की गाँव से एक पैसा या एना का एक भी दाना नहीं लेंगे. और इसका दुष्परिणाम हमें भोगना पड़ा , मेरे बच्चे राजू, सुकू, पिंकी माता – पिता का संघर्ष देखकर खून का घूँट पीकर जीते थे .

एक सिद्धांत एक संकल्प के कारण वर्माजी गाँव का कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे जबकि गाँव में साल भर का अनाज रख बंकि सारा बेच दिया जाता था . अगर मैं कभी प्रतिवाद करती थी तो सिर्फ इतना ही बोलते थे की तुम्हे मेरे दोनों हाथों पर भरोसा नहीं है ?

भरोसा कैसे नहीं होता ? इनके हाथ में शुक्र और वृहस्पति का बहुत ऊँचा स्थान है जिससे अल्प समय में ही बहुत ही ज्यादा ख्याति और प्रतिष्ठा अर्जित की . जब सुपौल , मधेपुरा , सहरसा जिला में था तभी बिहार के सब से कम आयु के इमानदार और सिद्धांतवादी .

वकालत इनके लिए एक नशा था . कमजोर और बीमार केस में भी ऑक्सीजन भरकर जिवंत बनाना इनका धर्मं था . मगर फिर भी लोअर कोर्ट, कम फीस, ऊपर से कोशी पीड़ित क्षेत्र – वर्माजी के पास मौजे नहीं थे और राजू के पास बनियान नहीं थी मेरे पास दस रूपये थे . राजू बोला पापा को मौजे दिलवा दो और वर्माजी बोले राजू के लिए बनियान ला दो – संवेदना बच्चों का था क्योंकि यही स्थिति थी डुमरा नरेश की . वर्माजी को बचपन से ही उस इलाके वाले डुमरा नरेश बोलते थे . वैसे उस समय दस रूपये का भी बहुत महत्व था क्योंकि उस समय दो रूपये किलो सरसों तेल , दो रूपये का एक मन (४० किलो) कोयला और दस से पंद्रह रूपये में अच्छी (सुन्दर) सूती सदियाँ मिला करती थी . नहीं मिलते थे तो पैसे . ऐसी स्थिति में सहस की पूंजी के साथ बच्चे पूरी लगन से पढ़ते रहे और प्रत्येक कक्षा में प्रथम श्रेणी या दव्तीय श्रेणी में उतीर्ण होते रहे . राजू पटना से दिल्ली चला गया . सुकू , पिंकी , लिली पटना विमेंस कॉलेज के हॉस्टल में रहते हुए भी बेटियों ने कभी नहीं कहा की हम ऐसा कपड़ा नहीं पहनेंगे और नहीं कभी कोई मेकअप का सामान माँगा और मैं भी इन चीज़ों को नहीं समझती थी . वैसे ही कपड़े राजू दिल्ली में भी पहनता था पर कभी किसी के मन में कोई हिन् भावना नहीं आई.

आहिस्ता आहिस्ता हम लोगों की स्थाति सुधरने लगी थी . वकालत के आरंभ में बहुत तकलीफ झेलनी परती है पर जब लोगों के रिटायरमेंट का समय आता है उस उम्र में वकील जवान होते हैं और फिर उन्हें पैसे रखने की जगह कम परने लगती है . नौकरी में लोग जब तक होते हैं ऐश करते हैं मगर रिटायरमेंट के बाद कोई उसे रखना नहीं चाहता .

कितने भी उच्च पद पर बच्चे कार्यरत हो तब भी अगर पिता वकील है तो बच्चे आशा भरी नजरों से देखते हैं .मगर नौकरी से रिटायर्ड पिता भी आशा भरी नजरों से बेटे की और देखते हैं.

एक सिद्धांत की रक्षा के लिए हमें इतना संघर्ष करना परा , जिसमें हमें अपने बच्चों का भरपूर सहयोग मिला . तभी तो आज मेरे सभी बच्चे अपने जीवन में सूर्य की तरह चमक रहे हैं .

वर्मा जी देह होते हुए विदेह हो गए ,सुख संपत्ति .वैभव ,विलाश का सबसे बड़े वारिस होते हुए भी कोई लिप्सा नहीं ,कोई मोह नहीं .इससे बड़े ऋषि मुनि भला हो सकता है कोई ?तभी तो विनयशीलता ,त्याग ,दु:ख में भी आत्म सम्मान बचाए रखना मेरे छहों संतानों का संस्कार बना.

पिता का कथन था की मेरी छः संतान ही मेरा छः बैंक बैलेंस है .आज उसी संतान का दु:ख ....सम्पूर्ण अतीत जैसे मेरे मन-मानस को व्यथा से बोझिल कर दिया था .

गोहाटी से तिनसुकिया के लिए ट्रेन पकडती हूँ .जंगल, झाड़ ,पेड़ .पौधों के बीच होकर रेलगाड़ी मंथर गति से बढ़ी जा रही थी .सुकू शांत थी . एक बार भी उसे आंसू नहीं बहाने दी क्योंकि उन आसुंओं का बुरा प्रभाव पाहून पर न जानें

क्या –क्या असर डालता .आखिर सहन शक्ति भी तो धरा जैसी ही थी .तिनसुकिया में सेंट्टू का दोस्त जतिन सरकार हमसे मिलने आया जो राजू को ही सेंट्टू समझ बैठा .वो ट्राफिक विभाग में कार्यरत था . राजू से बोला तुम एकेडमिक छोड़ कर नौकरी में मत आना .मेरी बीबी अगर हिन्दुस्तानी नहीं होती तो कब का मुझे छोड़कर चली गई होती .बातावरण हल्का हो गया था ,प्रकाश जी ठीक हो रहे थे .जतिन सरकार की समस्त पार्टी ये खबर लेकर आई थी .

छ: बजे के करीब हम लोग तिनसुकिया पहुच गए ,वहां से आठ बजे डिब्रूगढ़ के लिए आसाम मेल गाड़ी चली और ग्यारह बजे दिन में हमलोग डिब्रूगढ़ पहुँच गए .स्टेशन पर बहुत भीर जमा थी हमलोगों की आगवानी के लिए .वहां जो भी सुकू का चेहरा देखता विष्मित सा देखता ही रह जाता .

जब हमलोग हास्पीटल पहुंचे तोप् वहां पाहून के दोस्त रावतजी को देखकर सुकू का संयम टूट गया और वो उन्हें पकर कर जोर-जोर से दहाड़ें मारकर रो पड़ी लगा जैसे बंधी हुई नदी की धारा अचानक ही किनारा तोड़कर चीत्कार कर उठी हो . रावत जी उसे अपने कंधो और बाजुओ का सहारा देकर थामे हुए थे मगर वह पागलों की भांति अपने हाथ पैर पटक रही थी. रावत जी उसे समझाने का प्रयास करते रहे . मैं सोचने लगी की किस तरह पूरे रस्ते इसने अपने आप को नियंत्रित रखा . और कैसे पांच से आठ तारीख तक धैर्य बांध पाई होगी . समधी राजेंद्र जी मैले कुचैले वस्त्रो में एक कोने में लुटे – लुटे से खड़े थे और भाव शुन्य नज़रों से विधि का विधान देख रहे थे. क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है इस सबसे बेखबर मुझसे थोड़ी ही देर पहले पहुँचे थे यहाँ .

वैसे मरीज से मिलने का समय समाप्त हो चुका था फिर भी मैं जिद्द कर बैठी की एक नजर पाहुन को देखना है . मेरी जिद्द देखते हुए रावत जी मुझे लेकर अन्दर पहुँचे पर मैं उन्हें खोजते - खोजते आगे निकल गई उनको पीछे छोड़ क्योंकि मैं उन्हें पहचान ही नहीं पाई. तब रावत जी ने पीछे से आवाज देकर मुझे बुलाया .

आज तक मेरे मानस पटल से वो दृश्य ओझल नहीं हो पा रहा है. मैं डॉक्टर के पैरों में गिर परी थी और गिडगिड़ा रही थी – डॉक्टर साहब सिर्फ दो ही महीने हुए मेरी बेटी के ब्याह को .... जाते – जाते डॉक्टर जैसे ठिठककर रुक गया . सुकू के चेहरे की तरफ देखा और उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए बोला – ईश्वर से प्रार्थना करो बेटा.

अस्पताल के बारामदे के एक कोने में चादर बिछाकर हम सभी सिमटकर सिकुड़े बैठे बैठे भेलोल ले जाने के सन्दर्भ में बातें करने लगे . जब रक्त संचार रुक गया तो डॉक्टर ने कहा – अब जो भी हो मैं खुद प्रयोग करूँगा और उसके बाद उन्होंने खून चढ़ाना शुरू कर दिया जिस से रक्त संचार का अवरोध खत्म होकर पुनः रक्त संचार होने लगा . मैं नमित हो गई उन हिमालय स्थित पवित्रात्मा ऋषियों मुनियों के प्रति जिन्होंने मेरी पुकार सुनकर मेरे बच्चे की रक्षा की थी . रावत जी ने कहा एक बार उसे होश आया हटा तब उसने मात्र सुकू बोलकर फिर से बेहोश हो गया . हम लोग समझ ही नहीं पाए की सुकू कौन है ? क्योंकि हम लोग तो भाभी जी का नाम भावना ही जानते थे .

आंखें भर आती है सोचकर – सुकू की शादी से ढाई महीने पहले अचानक ही प्रकश जी दरभंगा हाउस में सुको को देखने आये थे . शादी के बाद उन्होंने राजू से कहा – भैया आप तो बड़े हैं मगर फिर भी मेरे मन में एक बात है जो आपको नहीं बताऊंगा तो किसे बताऊंगा ? क्योंकि मेरे दोस्त भी तो आप ही हो. ढाई महीने पहले हमने जब से सुकू को देखा आज तक मैं सो नहीं पाया , मुझे नींद आई ही नहीं . और आज इस अवचेतन अवस्था में पहल नाम सुकू का स्वारित कर अस्पष्ट उनकी कराह पता नहीं जन्मजन्मान्तर से बिछुरी आत्मा की पुकार थी . इसे कोई सह संवेद सहज ही अनुभव कर सकता है .

आज दहेज़ के कैंसर से पीड़ित समाज को कोई रास्ता , कोई उपचार नजर नहीं आता है . इसका कारण है जो लोग दहेज़ में मोटी रकम वसूलते हैं , समाज में उनकी चर्चा गरम रहती है , बेशक बुरा ही क्यों न हो पर चर्चा का विषय तो बने ही रहते हैं ऐसे लोग . मगर समाज में अभी भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने में सक्षम हैं . उनका एक सिद्धान्त है की अपनी प्रतिष्ठासे बढ़कर धन संपत्ति नहीं है . वे लोग दहेज़ नहीं लेते . हम लोगों में एक बत्तिसगामा मूल होता है जो आपस में ही शादी ब्याह बिना दहेज़ लिए करते हैं . यदि बत्तिसगामा से बाहर का अच्छा लड़का मिला तो बेटी ब्याह देते हैं , मगर अपने बेटे की शादी वो किसी भी तरह से बत्तिसगामा से बाहर करने को तैयार नहीं होते हैं . भले ही उनका बीटा किसी अन्य जाति में ही शादी कर ले . बड़े आदर्शवादी और सिद्धांतवादी होते हैं वे लोग . और ये इनका बहुत बड़ा गुण हैं . हम लोग स्वयं बत्तिसगामा मूल के हैं मगर अलग – अलग जगह बस जाने के कारण वो लोग हमें उन से बहार का समझते हैं . जो बत्तिसगामा मूल के बहार के होते हैं वो लोग दहेज़ लेने देने के लिए बहुत बदनाम होते हैं . “ले डूबता है एक नाविक नाव को मझधार में ” मगर ऐसे बात नहीं है , बत्तिसगामा से बाहर भी अच्छे – अच्छे खानदानी लोग हैं जो दहेज़ नहीं लेते और अपनी प्रतिष्ठा, आन , बान और शान बनाए रखने में सक्षम हैं . हम आठ बहनों की शादी मात्र एक घडी और एक फौन्टेंन पेन पर सम्पन्न हुआ . हमारे खानदान में दहेज़ लेना गौमास सदृश मन जाता है . मेरी दोनों बेटिओं की शादी भी बिना किसी सामान और बिना एक पैसा खर्च के हुआ है . ऐसे कितने ही परिवार ऐसे हैं जो दहेज़ नहीं लेते अगर उनकी संख्या गिनने लग जाए तो अनामदास के पोथा से भी कई गुणा बड़ा हो जायेगा .

राजेंद्र बाबू मेरे बड़े समधी और वर्माजी बड़े अच्छे दोस्त थे . सुकू दो या तीन साल की रही होगी और प्रकाश तीसरी या चौथी कक्षा में पटना में पढ़ता था उस समय जैसे कोई ऐसा हवा का झोंका आया जो हम सब को उड़ाकर इधर उधर बिखेर दिया . हम लोग सहरसा बस गए और राजेंद्र जी मुझफ्फरपुर . वर्माजी अपनी वकालत सहरसा में रहकर करने लगे क्योंकि मेरें ससुर स्व. सूर्यनारायण लाल दस उर्फ़ टूनाइबाबू जो १९५३ से १९८२ तक डुमरा पंचायत के मुखिया रहे यानि मृत्युपर्यंत तक उनका आदेश था की हमारी इतनी बड़ी जमींदारी का सबसे बड़े बेटे आप हो इसलिए घर के पास रहोगे तो अपनी जमींदारी भी देख पाओगे .

अपने मित्र राजेन्द्रजी से अलग हुए हमें एक दसक से भी ज्यादा हो गया था की अचानक पता चला की उनके पुत्र प्रकाश जी का चयन ओ. एन. जी. सी. में हो गया है इंजिनियर के पद पर . उस समय सुकू एम. ए. इतिहास की क्षात्रा पटना विश्वविद्यालय में थी. हम लोगों को लग रहा था की अब हमारी बेटी बड़ी हो गयी है अब इसका विवाह कर देना उचित होगा . ये सोचकर वर्माजी ने सुकू और प्रकाश के रिश्ते के विषय में एक पत्र राजेंद्र जी को लिखा और उसके प्रत्युत्तर में उन्होंने तुरंत एक पोस्टकार्ड लिखा के अगर आपको प्रकाश की आवश्यकता है तो आज से ही प्रकाश आपका हुआ . अब से प्रकाश आपका बीटा हुआ और सुकू हमारी बेटी हो गई. मेरी बहन की शादी होने वाली है और उसके बाद हम स्वयं आपको सूचित करेंगे दोनों बच्चों के रिश्ते के विषय में. आज तक वो साधारण सा पोस्टकार्ड एक अमूल्य रत्न की तरह मेरे अक्षय स्मृति कोष के साथ मेरी पेटी में सुरक्षित है .

कितने पिता ऐसे मिलेंगे जी इतने योग्य बेटे के सम्बन्ध के विषय में इस तरह से प्रत्युत्तर देने की क्षमता रखते होंगे . ये एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसकी गरिमा अपने आप में एक मिसाल थी.

विवाह से पहले हम लोगों के विरुद्ध खासकर सुकू के विरुद्ध लोगों ने कई तरह की बातें उन्हें बताई किसी ने कहा की लड़की लड़के से बड़ी है तो मेरी समधन ने उनकी बात काटते हुए कहा की मेरे दोनों बच्चों के जन्म के बाद उनके बड़े

बेटे राजीव का जन्मा हुआ है और उसके बाद सुकू का. किसी ने कहा की सुकू दाढ़ी बनाती है तो मेरी समधन ने हंसकर कहा कोई बात नहीं है मैं उसे दाढ़ी बनाने का रेजर वगैरह खुद लाकर दूंगी. कहने का तात्पर्य की नाना प्रकार की बाधाओं के उपरांत भी मेरी समधन वो स्त्रीरत्न हैं जिन्होंने किसी की बेकार की बातों की नहीं सुना और अपने विश्वास पर अडिग रही. वो बी. ए. ऍम. ए. पास नहीं थी फिर भी कितने बी. ए. ऍम. ए. पास स्त्री उनके व्यक्तित्व के समक्ष छोटी रहेंगी . इतना ही नहीं कुछ सखा संबंधियों ने कहा की मुझफ्फरपुर में जमीन खरीदकर दे दो दहेज़ में तो मेरी समधन कमलाजी को गुस्सा आ गया और बोली – नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिए हम लोग मुझफ्फरपुर में खुद अपने घर में रहते हैं और अनावश्यक एक इंच जमीन का टुकड़ा हमारे बेटों के मध्य भविष्य में विषवृक्ष का काम करेगा इसलिए हमें सिर्फ बेटी चाहिए क्योंकि ईश्वर ने अभी तक हमें बेटी से वंचित रखा था . और ये एक नारी की महानता का उत्कर्ष था.

आज वही समधन कमलाजी यानि प्रकाश की माँ भी वहां पहुंची हैरान – परेशान विधि के आघात से दण्डित हृत्वाक. मुझफ्फरपुर से डिब्रूगढ़ किस प्रकार वो अकेली आई होंगी .

ये एक ऐसी बेचैनी की आंधी थी जिसमे सेमल की रुई की तरह हम सभी उड़ते चले जा रहे थे . कोई काल अजगर की भांति हम सब के ह्रदय में फेन काढ़कर बैठ गया था .

पार्वती की कठोर तपस्या सीता की सहिष्णुता और सावित्री की पति के लिए जीवनदान लेने की हठधर्मिता आदि से सुकू को अभिसिक करती सिर्फ इतना ही बोल पाई – बेटा ये आपकी अग्निपरीक्षा है , अत्यंत धैर्य और सहस साथ पति की सेवा करो . और उसने किया भी . उसके चेहरे पर कहीं वेदना का कोई भाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था . शांत स्मित आनन् के साथ वो लग गई अपनी साधना में . और यह आश्चर्य ही है की उसके स्पर्श मात्र से मुर्छित प्रकाश के शारीर में एक चेतना सी आई लगा जैसे आत्मा और परमात्मा के मिलन का कोई अदभुत संयोग हो .

हम लोग आरोग्य भवन के दो कमरों के एक अपार्टमेंट में ठहरे थे . अस्पताल को रिक्सेवाले आदि मेडिकल बोलते थे . अब हम लोगों का मन कुछ शांत और हल्का हो गया था . आरोग्य भवन से मेडिकल के लिए शाम को हम सभी निकलते थे तो सड़क के दोनों ओरचाय के बगीचे थे और उसके किनारे – किनारे युकोलीप्टस के बड़े बड़े पेड़. युकोलीप्टस की अपनी एक सुगंधी होती है इसका एहसास या कहें की प्रथम एहसास मुझे डिब्रूगढ़ के टी गार्डन में हुआ - कितना हल्का व मादक एक अकथ्य अनुभूति वो स्वर्गिक सुगंध . जिस मनहूस पेड़ को हमलोग अपेक्षित कर लोगों को उपदेश देते हैं की – मानवजीवन युकोलीप्टस जैसा दीर्ध , छायाविहीन , सुगंध विहीन नहीं होना चाहिए उस युकोलीप्टस से ये आलस सुगंध गंध .

ग्यारह तारीख की सुबह बहुत तेज तूफानी हवा चली तो दुसरे दिन मेडिकल जाते हुए हमने देखा कितने ही युकोलिप्टस धराशायी हो गया था भीतर से जर्जर , खोखले पेड़ झुके – झुके से सारे पेड़ बूढ़े हो चले थे . तरुवर के पकने के बाद उसमे सुरभि आई थी . युकोलिप्टस में भी कुछ न कुछ गुण है . मगर मनुष्य उसे उपेक्षित किये रहते हैं . मानव भी बहुत विचित्र प्राणी है कोई किसी गुणवान को भी नकार देता है और किसी गुणहीन को सम्मानित कर देता है. एक दुसरे को चोट पहुँचाने की मानव प्रकृति नहीं उसकी प्रवृति बन चुकी है .साहित्य हो या समाज या देश परिवार सब जगह वही हाल. हम लोग असम में हैं या बिहार में कुछ समझ में नहीं आता . आरोग्य भवन मारवाड़ी समाज संस्था से निर्मित बहुत बड़ी और समुचित व्यवस्था है . बहार से आए मरीजों के लिए गेस्ट हाउस रूपी कई बड़े – छोटे कमरों की अच्छी आवास की व्यवस्था की गई है . प्रत्येक कमरे अलग – अलग मारवारी द्वारा निर्मित है जहाँ संगमरमर

पत्थर पर उनका नाम अंकित किया गया है . हम लोग १५ नंबर कमरे में ठहरे हैं . कमरे के ठीक सामने पुस्तकालय व कार्यालय तथा टेलीफोन है . शाम के समय टी . वी. बरामदे में रख दिया जाता है और चारों तरफ की बलकोंनियों व बरामदे से सभी इसका आनंद लेते हैं . उसके आसपास भी ढेर सारी कुर्सीयां रखी गई है वहां भी बैठकर लोग टी . वी. देखते हैं . हमारे कमरे के बाई ओर कैंटीन हैं जहाँ छः रूपये प्लेट भोजन की व्यवस्था है .

सुबह – सुबह चाय पिने हम लोग निकलते हैं और थोड़ी दूर पर चाय वाले का हुलिया देखकर पूछते हैं की आप बिहार से हैं ? उसकी हाँ सुनकर तुरंत मातृभाषा में पूछ बैठते हैं – “कतय घर छह हौ?” और मुझफ्फरपुर सुनते ही मैं चौक जाती हूँ और मेरी समधन हँसने लगती हैं क्योंकि कायदे से वो दुकान अब मेरा समधियाना हो गया था . सच में बहुत अच्छी चाय पिलाई उसने .

भोजन के लिए बगल के होटल में गई “ होटल राजहंस” मन में ज्वार सा उठता है और पूछ बैठती हूँ आपका घर कहाँ है ? उसने कहा बिहार , नाम पूछने पर “राजेंद्र प्रसाद” बताया . उस होटल के सारे कर्मचारी दरभंगा, मुझफ्फरपुर और मोतिहारी के ही थे . सहरसा से १८०० किलोमीटर दूर डिब्रूगढ़ में अपने स्थानीय लोगों को देखकर मन एक अदभुतउल्लास से भर्र गया . होटल की दीवार पर अंकित ये पंक्तियां मन को और भी हर्षित करने लगा – “If pleased tell other If not please tell us.”

यानि आप इस होटल से खुश हैं तो दूसरों को बताएं और नहीं तो मुझे बताएं .

तीन रूपये में एक थाली चावल , दाल, एक रसदार सब्जी , एक भुजिया , निम्बू , प्याज व अपनत्व होने पर पापड़ भी . पवित्रता व अपकता जैसे इस होटल की विशेषता थी .

मेडिकल के रस्ते में बड़ा सा जलान मंदिर राधाकृष्ण का है . एक तरफ आदि शक्ति और दूसरी तरफ शिवलिंग . संगमरमर से बना भव्य मंदिर , शिल्पकार की अदभुत शिल्प ! चरों तरफ दूर – दूर तक फैला मनोहारी उद्यान . कृत्रिम नहर आदि बनाकर मंदिर की प्राकृतिकता को शाश्वत किया गया . राधा कृष्णा का मंदिर ऊपर था . नीचे बड़े हाल में सरस्वती की भव्य प्रतिमा थी . दोनों तरफ गद्देदार कुर्सियों की पंक्तियाँ व बीच में विभिन्न वाद्ययंत्र रखा गया था . जन साधारण के लिए यह स्थान वर्जित था . देखने से ही पता लग रहा था की ये सरस्वती मंदिर है जहाँ नाना प्रकार का संगीतमय कार्यक्रम होता होगा .

आदिशक्ति के मंदिर में सहरसा का ही पुजारी था . बड़े से त्रिशूल के भीतर लाल रंग की प्रतिमा का रूप रेखा मात्र था उसके आगे रानी सती का फ्रेम – जडित फोटो था. सुसंस्कृत शालीन भक्त पुजारी – हमने पूछा – आपका घर कहाँ है पंडित जी ? सहरसा .

सहरसा में कहाँ ? हमने दुबारा पूछा – चौसा के पास गणेशपुर मेरा घर है और मेरा नाम सुधाकर झा और पिताजी का नाम श्री राजेश्वर झा है जो गाँव में रहते हैं .

घर से इतना दूर एक प्रवासी के मुंह से सहरसा का नाम सुनकर जैसे हम रोमांचित हो उठे . राधा कृष्ण के मुख्य मंदिर में गोरखपुर के पंडित थे और शिव मंदिर में छपरा के .

वापसी में रिक्सा पर बैठते ही – अब रिक्सेवाले ने हम से पूछा कहाँ घर है आप लोगों का ? “कतय घर अछि आहां सभक” उसके मुंह से अपनी मातृभाषा सुनकर हंसी आ गई हम लोगों को . कोई सहरसा सरडीहा का, कोई मधेपुरा

भर्राही चौक , कोई मुझफ्फरपुर , कोई दरभंगा – मधुबनी . हमने कहा – तुम लोग अपना देश कोश छोड़ इतनी दूर क्यों आ गए? मन लगता है यहाँ ? उसने कहा हाँ मन लगता है, बड़ा शहर है ना. हमने फिर पूछा – आसामियों को तुम लोग रिक्सा नहीं चलाने देते क्या ? उसने मुस्कुराते हुए कहा – हुंह .. आसामियों में इतना दम कहाँ जो रिक्सा खींच सके .

एक मधेपुर वाले रिक्सेवाले से हमने पूछा – तुम कितने लोग हो वहाँ के ? उसने बताया हम लोग सिर्फ सहरसा और मधेपुरा के डेढ़ – पौने दो सौ लोग यहाँ हैं . हमने फिर पूछा ? – कितने पैसे कम लेते हो ? उसने कहा – खा पी कर चालीस से पचास रूपये तक बचा लेते हैं . किसी भी दुकान में कुछ लेने जाते हैं तो प्रायः बिहार के लोग मिल ही जाते हैं . आरोग्य भवन कैंटीन में जाते हैं तो कुछ यूँ ही अँधेरे में तीर छोरते हुए पूछ लेते हैं – “अहन सभ कतय से आयल छी?” सहसा एक दस बारह साल का लड़का बोल पड़ा “हम दरभंगा सं आयल छी “ एक १४-१५ साल का लड़का बोल पड़ा “हम कमतौल सं आयल छी “ माँ – बाप के विषय में पूछने पर बोला वो लोग घर पर हैं . और फिर क्या जैसे भीड़ खड़ी हो गई थी वहाँ बिहारियों की .

जिस प्रकार पढ़े लिखे लोग डॉक्टर इंजिनियर बनकर विदेश जाते हैं पैसे कमाने उसी तरह से ये मजदुर वर्ग अपने राज्यों को छोड़ एक तरह से विदेश में पैसे कमाने के लिए बस गए थे . वो कहते हैं न – जितनी शक्ति उतनी भक्ति .

इस बीच सुकू और प्रकाश जी को जैसे नवजीवन मिल गया था . अब प्रकाशजी धीरे – धीरे चलने लगे थे . तब हम लोगों ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ वहाँ से वापस लौट जाना उचित समझा क्योंकि अब वो घर समधियाना हो गया था .

रात भर मुझे नींद नहीं आई . जीवन के कटु मधु अनुभव की स्मृतियाँ लगा जैसे आँखों में मिर्च चली गई हो , पूरी रात बिस्तर पर छटपटाती रही . आँखों – आँखों में रात गुजरती जा रही थी तीन बजे उठकर चुपचाप बरामदे में जाकर खड़ी हो गई .

मुसलाधार बारिश हो रही थी , पीपल के पत्ते टूट – टूटकर आरोग्य भवन के छत पर बिखर – बिखर कर जैसे छटपटा रहे थे बिल्कुल मेरे मन की तरह . मरकरी की लाइट फैली हुई थी चारों तरफ मगर फिर भी सघन अंधकार था . कभी कभी बिजली सी चमककर चारों ओरउजाला बिखेर रही थी . मैं चुपचाप बैठी रही प्रकृति से अपने आपको तादाम्य करती . समस्त प्राणी नींद में डूबे हुए थे मगर प्रकृति कितनी चंचल है . सावनी हवा के झोंकों से उड़ती प्रकृति का आँचल और फिर थोड़ी देर बाद आसमान की चंपई तन पर स्वर्ण सद्रष धूप की आभा दमकने लगी . ऐसा लग रहा जैसे लहराती बलखाती प्रकृति का चंचल प्रगल्भ आँचल मुझे पुकार रहा हो . ओंस कण सी वर्षा की बूंदे हीरे के हार जैसी अरुणाभ ज्योतित ...

दुसरे दिन रिक्से से ब्रह्मपुत्र के दर्शनार्थ निकल पड़ी . ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर प्रकृति की गोद में बसी डिब्रूगढ़ शहर जिसके चारों ओर भाह्मपुत्र नदी किसी नायिका के मेखला सी आसाम के कमर से लिपटा था . नदी के पार दूर क्षितिज पर नीले पहाड़ की छवि देख पूछ बैठी की – वो कौन स स्थान है ?

अरुणाचल प्रदेश –

सुनते ही चौंक उठी . अरुणाचल प्रदेश इतना दूर इतना दूर शायद सूर्य की प्रदीप्त रश्मिरेख अपनी प्रथम अरुणाभ वहीँ बिखेरते होंगे . तभी तो वो अरुणाचल प्रदेश हो गया .

आगे दूर – दूर तक फैला ब्रह्मपुत्र की विपुल जलराशि सुदूर क्षितिज पर अरुणाचल का अरुणाभ , जैसे एक विरत सौन्दर्य दर्शन हो रहा हो , जिसमे प्राण का स्पंदन , प्रकाश की रश्मि , अरुणाभ आँचल से निःसृत हो ब्रह्मपुत्र की नीली जलधार पर कांप रही थी .

एक मौन मूक सौन्दर्य से दिव्या संगीत की गूंज धरा अंबर को थरथरा रही थी , जैसे शेषनाग जैसे ब्रह्मपुत्र पर आकाश के क्षीर सागर में विष्णु शयन कर रहे हों कान्तिमयी लक्ष्मीजी के साथ . ब्रह्मपुत्र के तट पर धोबियों ने कपडे फैला रखे थे . आश्चर्य की सारे धोबी बिहार के ही थे . दिनकर की अनेकता में एकता के स्थान पर मुझे महसूस हुआ जैसे लोग बिहारियों पर हँसते हैं . मगर हिंदुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में कहीं न कहीं एक छोटा स बिहार बसा है और स्थानीय लोग उन पर आश्रित हैं , मगर इसका लेखा – जोखा कौन करेगा ? समस्त देश ही नहीं , समस्त विश्व एक डोर में बंधा है मगर इसे समझने वाला कौन है ? ...भिन्नता में अभिन्नता .... वापसी में आसाम की प्राकृतिक सुषमा का रसास्वादन करती रही . कहीं – कहीं धरती की छाती से आग की लपटें निकर रही थी , वहीँ आस पास के लोगों ने बताया – यहाँ प्राकृतिक गैस का भंडार है – जिसका उपयोग अभी तक पूरी तरह से नहीं हो पाया है .

तो क्या वसुधा का अंतर नहीं तप रहा ? क्या उसको चोट नहीं लगती ? क्या वो “क्षत” नहीं होती ? मनौती मानरखी थी की वापसी में कामख्या जाकर दर्शन करुँगी . मन ही मन कल्पना में ही माँ कामख्या भगवती को प्रणाम कर नतमस्तक हो गई .

तंत्र साधना की दृष्टि से बंगाल और असम को शक्ति उपासना का केंद्र माना जाता है . पूर्वी भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्तिपीठ माना जाता है असम का कामरूप कामाख्या.

बाल्यकाल से ही सुनती आ रही थी की कामरूप में बालाएं पुरुषों को भेड़ – बकरियां बना कर रखती हैं . मन में उत्कंठा थी और ध्यानकर्षण अत्यधिक गहरी .

गौहाटी नगर के पश्चिमी हिस्से में निलगिरी पर्वत पर माता कामख्या मन्दिर . इस मन्दिर में एक गुह्याकार कुंड को शिवप्रिया सटी का गुप्त अंग मानकर उसकी पूजा अर्चना की जाती है . एक बंगाली पंडित हम लोगों से माता का पूजन करवाते हैं मगर महादेवी की उक्ति – “क्या पूजा क्या अर्चन रे – उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे ---“

उस पवित्र स्थल के कण – कण से शक्ति की उर्जा निःसृत होकर हम सब के रोम – रोम को कंपित कर रहा था . समस्त परिवेश का हम सब से तादाम्य हो गया और हम एकाकार हो गए माता के मंदिर में , जहाँ न तो कोई सगुन साकार था और न ही कोई निर्गुण निराकार ! बस आत्मा परमात्मा शक्ति और शिव का एकत्म्य , अनिर्वचनीय अननुभूत क्षण – आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही थी – और होंठ बुदबुदा उठा था –

“सिर के सिंदूर माँ हे , हम त अहीं के सौपने छी .

गोदी के संतान माँ हे , हम त अहीं के सौपने छी .

हम त अबला छी , दुखिया छी ..”

अर्थात - माँ मैंने अपना सुहाग , संतान सब आपको समर्पित कर दिया . मैं अबला और दुखिया हूँ आपकी शरण में ....

वरिद तरंग 1994

साहित्य सत्यम् शिवम् सुन्दरम्.......................की अभिव्यक्ति है। मात्र सत्य की प्रतिष्ठा से ही साहित्यकार का कार्य पूर्ण नहीं होता है अपितु सत्य में सुन्दरता का समावेश हो तो कला का रूप निखर आता है और दोनांे के योग से सत्य का मंगलरूप मानव जीवन को शुभ बना देता है और फिर वह स्वयं ही आनन्दमय हो उठता है।इस तरह से साहित्य में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का अजस्त्र असीमित धारा प्रवाहित होती रहती है।

साहित्य चाहे किसी भी भाषा का हो -मौथिली, मणिपुरी, डोगरी, मराठी आदि उसमें स्थायित्व का बहुत बड़ा महत्व होता है। चाहे कोई भी युग आए किन्तु प्रेम, ममता, मोह, वात्सल्य, घृणा, क्रोध आदि भावना चिरन्तन होता है, शाश्वत होता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है और अब साहित्य संस्कार का दर्पण हो गया है। समाज रहा कहाँ?जहाँ एकात्मकता होती थी, एक दूसरे के साथ मिलकर दुःख -सुख बाँटते थे वह होता था समाज मगर अब? अब सभी सिर्फ अपने लिए है। समाज टूट रहा है, परिवार बिखर रहा है। पति-पत्नी संतान-मात्र परिवार की अवधारणा हो चुकी है। एक समय ऐसा भी आता है जब माँ-बाप अपने आप को नितांत अकेला पाते हैं। सभी बच्चे अपने-अपने तथाकथित परिवार में उलझे हुए हैं। फिर मेरा परिवार कहाँ और कौन है?

और फिरदुर्दिन तो तब आते हैं जब माँ या बाप में से एक स्वर्ग सिधार जाए। बच जाते हैं एक किस्मत या यूँ कहे कि बदकिस्मती। यहाँ इस कलम से उसे व्यक्त करने में मै अपने आप को पूर्णत अक्षम पा रही हूँ । एक माँ-बाप अपने सात बच्चों को पाल पोसकर इंसान बनाते हैं मगर सात बच्चे मिलकर भी एक माँ-बाप की देखभाल नहीं कर पाते तो क्या हम ऐसे परिवार को परिवार की संज्ञा दे सकते हैं?

क्या साहित्य का कोई दायित्व नहीं इस दर्द के लिए ?

अचानक से मेरी तंद्रा भंग हो गई क्योंकि वर्मा जी ने जोर से मेरा हाथ पकड़ कर झकझोरते हुए पूछा-क्या सोच रही हो ?और टेªन भी रूक गई थी? मद्रास-जम्मू में हम दोनांे बैठे थे और सोच रहे थे लेखक कलाकार उदार वैश्विक दृष्टिकोण रखते हैं, समस्त मानवता को एक परिवार के रूप में देखते हैं। समस्त पृथ्वी कुटुम्ब है। लेखक, कलाकार यदि राजनीतिक रूप से प्रभाव हैं तो भारत ही नही अपितु समस्त विश्व में एक जबर्दस्त नैतिक शक्ति का निर्माण कर सकते हैं जिसका अनुपम पं्रभाव राजनीति पर पड़ सकता है। विश्व-शान्ति का सपना साकार होना ही तो साहित्य है। कलाकार के हदय में चैतन्य का जो ....

समस्त ब्रहाण्ड के मूल में जो विराट चैतन्य ज्योति है वो उसका अंशमात्र है इसलिए वो विश्वात्मा का अनिवार्य अंग हैं।आप इतना क्यों सोचती हैं? ऐसा सभी सोचने लगें तो? वर्माजी बोले राँची में अन्तर्राष्ट्रीय मैथिली सम्मेलन हुआ था डॉ0 घनाकर ठाकुर के हदय में जो स्फुल्लिगं प्रज्ज्वलित हो रहा था कौन उसे महत्वपूर्ण मानता है। मगर डॉ0 जयकान्त मिश्रा बाबू साहब चौधरी जी जैसे मूर्धन्य साहित्यकार आए थे ठीक है और भी सभी गणमान्य जन आए थे। आयोजन भी अपने आप में उत्कृष्ट रहा। मगर कुछ रिक्तता का आभास तब भी हो रहा था। कमी है एक ऐसे मैथिली मंच की जहँा सारे नये पुराने जाति-पाति से इतर लेखको का समायोजन हो सके। मैथिली को बखारी बन्द न रख उसे हर दिशा में बिखेर देना चाहिए जिससे खेतों में लगे फसलों की तरह लहलहा उठे, प्रकृति का कण कण मैथिलीमय हो जाए वाकई ऐसे ही मंच की आवश्यकता है मैथिली को। पर क्या ये संभव है? समकालीन भारतीय साहित्य अकादमी

के कार्यालय दिल्ली में समकालीन भारतीय साहित्यः के संपादक गिरीघर राठी से भेंट हुई थी- हँसमुख मिलनसारा, व्यक्तित्व अपनी रचना स्वयं अनुवादन कर भेजने का आग्रह किया उन्होने मुझसे। मगर महामाया की माया मैं अपनी रचना का अनुवाद कर उन्हंे भेजी और सधन्यवाद वापस हो गया। देवशंकर नवीन जी ने मेरी उसी कविता का अनुवाद किया और वो प्रकाशित भी हो गयी। मैं हँस पडी थी और आज भी मुझे हँसी आती है। नए कवि लेखक पूछते है कि मैं कैसे प्रकाशित होऊँ मै स्वयं इसका उत्तर नहीं जानती कि ऐसा क्या मापदण्ड है जिसके आधार पर कोई प्रकाशित होता है। मैं तो उस समय प्रकााशित हुई थी सन 61 ई0 में जब रचनाकारो का मान-सम्मान था। मैं मिहिर और वैदेही की आभारी हूँ जोे प्रथम प्रयास में ही मैरी रचनाएँ छप गई। सुधांशु शेखकर चौधरी जी ने मुझे मिहिर कार्याल्य बुलाकर आशीर्वाद और उत्साह से भर दिया था जिसके बल पर मै आजतक इस स्थान पर स्थापित हूँ। डॉ0 कृष्णाकान्त मिश्रा वैदेही के माध्यम से अजस्त्र आशीषधार मिला। मैं बाल्यकात्य से ही हिन्दी में लिखती रही जो बाल पत्रिका चंदामामा बालक आदि मंे प्रकाशित होता रहा प्रसिद्ध लेखक दिनेश्वर लाल आनन्द का भी

आशीर्वाद मिलता था जिन्हें मैंने देखा भी नहीं था। पर कालंातर में वो मेरे नन्दोई बन गए।15 वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हो गया। पति महोदय ने मैथिली में लिखने का आग्रंह किया। मैं अकचका गई क्योकि मैथिली तो मैंने कभी पढ़ी नहीं थी। मेरे पापा ब्रजेश्वर मल्लिक डिप्टी कलेक्टर थे अंग्रेजी शासन काल से स्वराज तक फिर भी वो अपने घर में रोज मैथिली में ही बातचीत करते थे, कारण बच्चे अपनी मातृभाषा भूले नही बल्कि उससे प्यार करे उसको आदर दे। और परिणाम यह कि सदैव मैथिली बीज स्वरूप मन मानस में अंकित है। वर्माजी के आग्रह से ज्ञात हुआ कि उनके दोस्त राम देव झा जी की सलाह थी कि मै मैथिली मे लिखूँ। मुझे हिन्दी मे भाव आता था पर मैथिली में नहीं बडे ही असमंजस्य की स्थिति बन गई थी मगर धीरे धीरे मुझे स्व हरिमोहन झा जी, सुरेन्द्र झा सुमन जी, अमरजी मिहिर मणिपद्म जी, मायनन्द जी आदि सभी लोगो का असीम स्नेह, उत्साह और आशीष मिला कि मैं सरपट भागने लगी। मैथिली रचना संसार में। याद आ जाता है एक वाकया। सरस्वती पूजा के दिन प्रो डॉ0 मनोरंजन झा जी आए थे मुझसे मिलने और उन्होने कहा आज सरस्वती पूजा का दिन है और प्रतिमा दर्शन के बाद मैं आपका दर्शन करने आया हूँ साक्षात सरस्वती का दर्शन। अचम्भित सी हो उठी मैं जैसे मन के सारे तार झनझना उठे। खुशी या रोमांच से नहीं एक अपराध बोध से कि माँ सरस्वती ये सुनकर क्या समझेगी। डॉ0 नवीन चन्द्र मिश्रा जी मैथिली विभाग के अध्यक्ष बनकर सहरसा आए थे। वो हम लोगांे से मिलने हमारे घर आए थे। बातचीत के क्रम में अभिभूत होकर बोल उठे मुझे दरभंगा से सहरसा आने का बिल्कुल भी मन नहीं था मगर मैंने सोचा कि वहाँ जाकर दो देवियों के दर्शन का सौभग्य प्राप्त हो जायेगा। एक भगवती उग्रतारा और दूसरी भगवती शेफालिका। मैं ही नहीं वहाँ बैठे वर्माजी के अतिरिक्त जो भी तीन चार लोग बैठे थे सभी आश्चर्यचकित हो उठे और मैं तो लज्जावश जैसे धरती में गड़ी जा रही थी। मैं स्वयं अपने आप को तुच्छ ही समझती हूँ मगर ये मान सम्मान मनोरंजन जी व नवीन जी की हदय की विशालता ही तो थी वो एक समय था जब साहित्य में राजनीति नहीं थी। सहरसा के कण कण में साहित्य का रंग भरा था। प्रत्येक सप्ताह साहित्यिक कार्यक्रम होता था। एक आयोजन स्व भवेशमिश्रा जी करवाते थे तो दूसरा तुरंत जयानन्द झा जी। हम दोनांे समारोह की जान थे। इन सभी आयोजन के सूत्रधार होते थे साहित्यमय मंत्रेश्वर झा जी जो उस समय वहाँ चार्ज आफिसर थेे। वो जब तक सहरसा में रहे उन्हांेने संपूर्ण साहित्य को एक नवजीवन दिया नई दिशा दी नई-नई आशा और उषा देकर सहरसा की धरती को कृतार्थ किया। ये था रस सिंचित सहरसा। ़विद्यापति जयंती में एक बार आरसी प्रसाद सिंह जी आए थे। मैं गुलाबी साड़ी में मंच पर मौन मूक हो बैठी थी। डॉ0 जयकान्त मिश्रा मणिपद्धन जी, अमर जी, मौनजी, जीवनकान्तजी आदि मैथिली के मूर्धन्य कवि सब के सब बैठे थे ।कवयित्री में सिर्फ मैं थी अकेली। थोड़ी देर में आरसी जी ने मुझे बुलाकर पूछा आप शेफालिका हैं क्या? मैंने झुककर उनके चरणरज

लिए। उन्हांेने कहा आपको देखते ही मैं समझ गया कि आप शेफालिका ही हो सकती है। आपकी रचनाएँ मै पढ़ता हूँ। इतना सुनते ही जैसे मेरे हाथांे मे ताजमहल आ गया था। अहाँ शेफालिका भ सकैत छी और मेरे मन मास्तिक में आरसी जी कविता की वो पंक्तियाँ नाच उठी जिस पर मेरा नामकरण हुआ था मधुकरि एहि विश्व विपिनक हम सरल शेफालिका छी। उस समय सहरसा साहित्यिकता के उत्कर्ष पर था। मैथिली के मूर्धन्य साहित्यकार प्रबोधनारायण सिंह जी का भव्य व्यक्तित्व जैसे सहरसा के गौरव गारिमा को और भी बढ़ा रहा था। उनका समस्त परिवार मैथिली के लिए समर्पित है। अनिमाजी, नाचिकेता जी, इलाजी एक साहित्यिक परिवार निष्पक्ष। आदर्श व गुणग्राहक, मँूगफली खाओगी अचानक वर्माजी के स्वर ने मुझे सहरसा से खीचकर टे्न में ला दिया। टाइम पास-टाइम पास मूँगफली वाला जोर-जोर से बोल रहा था। टाइम पास कितना अच्छा पर्याय बन गया था। देखो न सहरसा की याद आ गई-मायानन्द जी महेन्द्र जी धीरज जी मनोरंजन जी केदार कानन, वियोगी, अंबिका मिश्रा जैसे हर किसी ने स्मृति पटल को सजल बना डाला है। मन करता है फिर से उसी स्नेह वर्षा में भीगती रहूँ। मेरी बातंे सुन वर्माजी बोल पड़े गाडी आगे भागती जा रही है और तुम पीछे का सोच रही हो। आगे देखो नया-नया परिवेश नये-नये लोग नई-नई भाषा नई-नई सी हँसी-उनकी बात सुन मै भी हँस पड़ी। टे्न में भाति-भाँति की बाते हो रही थी जीजा साली की जोड़ी खिलखिला कर हर सिंगार के फूल बरसा रही थी। मेरे डोगरी भाषा के विषय में पूछने पर और जोर से खिलखिलाने लगते है। डोगरी तो अब सिर्फ गाँवांे में बोली जाती है जो पिछडे लोग है वही बोलते है बाकी सब हिन्दी बोलते हैं मैं फिर सोच में डूब जाती हूँ मातृभाषा के लिए लोगों के मन में इतना अनादर क्यांे? हिन्दी राष्ट्रभाषा है। मगर जितनी भी लोक भाषाएँ है वो किसी न किसी की मातृभाषा है। पर इसे नहीं जानने की अनुभूति सभी में शायद एक गौरव या आनन्द का एहसास कराता है। लोग अंग्रेजी, रसियन, चायनीज, फ्रेंच आदि जानने के लिए परेशान रहते हैं मगर अपनी मातृभाषा के नाम से संकोच से भर जाते हैं। मन में हीन भावनाएँ आने लगती है।कितनी भयावह स्थिति है ये। कौन जानता है एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब लोग या देश के भावी कर्णधार अपने देश समाज परिवार इतना तक कि अपने परिवार और माता-पिता तक को भूल बैठे। एक और बात मातृभाषा का राष्ट्रभाषा से कोई बैर भाव कभी नहीं रखना चाहिए। राष्ट्र के प्रति सम्मान आदर का भाव बच्चों के हदय में भरना माँ बाप का परम पुनीत कर्तव्य है। राष्ट्रभाषा हिन्दी से किसी भी भाषा को कोई क्षति नहीं होती है। जिस प्रकार हिमालय से निसृत प्रत्येक नदी सागर में समाहित हो जाती है उसी तरह प्रत्येक मातृभाषा लोकभाषा का लक्ष्य मंगलकारक होता है जो राष्ट्रभाषा हिन्दी को विपुल अलंकरण से अलंकृत करता है। हम लोगो की दिशा गलत है। कभी किसी एक फूल से उद्यान नहीं सजता, किसी एक नक्षत से आकाश नहीं भरता वैसे ही किसी एक भाषा से देश कभी समृद्ध नही होता। उस टे्न में बात चल रही थी डोगरी भाषा की पर मेरा मन तो किसी और टे्न सवार हो चुका था जब हम लोग श्र्रमजीवी एक्सप्रेस से अपनी यात्रा पर निकल रहे थे तब विदा कराने बहुत से साहित्यकार लोग आए थे राजमोहन जी, अग्निपुष्प आदि व्यास जी, देवकांतजी, मोहन भारद्वाज जी सुभाषजी आदि के साथ ये हमारी यात्रा दिल्ली की थी।

श्रम करते करते श्रमजीवी शायद पस्त हो चुकी थी इसलिए बहुत देर से खुली। तब भी अभियजी अपनी पत्नी के साथ दौड़ते-भागते किसी तरह खुली टे्न में सवार हुए ।सभी साहित्यकारों के साथ एक प्रकाशक भी हमसफर थे। बड़ी ही मनो विनोदपूर्ण यात्रा थी वो। चूँकि स्त्री में मैं अकेली थी इस लिए सब मेरा ही खयाल रख रहे थे। भारद्वाज जी के नेतृत्व में मिनी मिटींग का रिहर्सल टे्न में भी चल रहा था। अभियजी की पत्नी का आतिथ्य सत्कार मिथिला की संस्कृति से भरा पूरा था रेलगाडी-रेलगाडी न होकर घरगाडी बन गयी थी। मन के हिलकोरों के साथ टे्न की हिलकोरों का अदभुत साम्य था। खासकर व्यास जी का संत स्वभाव और पूजा पाठ ने समस्त वातावरण को पावन बना दिया था। उस मीटिंग में दरभंगा से सुरेश्वर जी रामदेवजी और हंसराज जी थे, बेगुसराय से हासमी जी, हैदरावाद

से नचिकेताजी आदि सभी पहुँचे थे।साहित्य अकादमी सचिव इन्द्रनाथ चौधरी जी अपनी प्रभावशाली व्यक्तित्व और मनमोहक मुस्कान के साथ बोले आप लोग अपनी मातृभाषा मैथिली में ही मीटिगं करे सुनकर बहुत अच्छा लगा। देवकान्त जी मेरी बातों का समर्थन करते थे। जब वे मैथिली अकादमी के निदेशक थे तो सबसे पहले मेरे कथा संग्रह 'एकटा आकाश' का प्रकाशन पूरे मन से किया। वो स्वीकृत पांडुलिपि चार पाँच साल से अकादमी में पड़ा था। रमेश भसीनजी ने अपने कार्य शैली से सबका मन मुग्ध कर दिया था। मीटिंग चलती रही अंतर में विरोध रहते हुए भी एक मत एक रस की धारा सी प्रवाहित होती रही और हम सब उस धारा मंे बहते चले गए। इन्द्रनाथ चौधरी जी और रमेश भसीन जी मैथिली परिवार के ही सदस्य प्रतीत हो रहे थे सहज सरल निर्विकार निरहंकार। यात्रा अनुदान के प्रसंग में इन्द्रनाथ जी ने कहा जो बूढे न हो और यात्रा कर सके वही अनुदान के लिए सक्षम हैं। मैं अपना नाम बोली तो चौधरी जी चाैंककर मेरी तरफ देखने लगे एक महिला जो घर परिवार से बंधी हो भला वो कैसे यात्रा कर सकती है?मगर मेरे यायावरी तन और मन की व्यथा भला कौन समझ सकता था जो सदैव यात्रा में ही रहता है सब ने अपनी सहमति दे दी और मै अपरूप रूप संधान में डूब गई खुशी की। यात्रा तो तभी प्रारंभ हो गई थी कल्पनाओं में। मगर आज उस अनुदान के क्रम में मै जम्मू जा रही थी। जम्मू विश्वविद्यालय के बौद्ध अध्ययन विभाग में मेरे छोटे बहनोई डॉ0 वैद्यनाथ लाभ रीडर है। मेरी छोटी बहन निहारिका डवल एम,ए,कर वहाँ रिसर्च कर रही थी। मैं अपने आगमन की खबर उन लोगांे को दे चुकी थी। वैसे तो यात्रा अनुदान राशि इतनी नही होती कि दो लोग यात्रा कर सके मगर मैं वर्माजी के बगैर कही जाना क्या जाने की कल्पना तक नहीं कर सकती थी और वर्माजी भी इसमें पूरी तरह मेरा साथ निभाते थे चाहे कितने भी व्यस्त रहें या उनके बिना मेरा कोई अस्तित्व भी है ये मेरे लिए सर्वथा अकल्पनीय है। पटना से दूर दिल्ली दिल्ली से दूर जम्मू। दिल्ली से किसी टेªन में आरक्षण नही मिलने के कारण इस मद्रास जम्मू में आरक्षण मिला। 12ः30 बजे रात में खुलकर दूसरे दिन 3 बजे दिन में जम्मू पहुँचाएगी। टेªन में श्री नगर मेडीकल कॉलेज के प्रोफेसर डॉ0आरिफ गुल भी यात्रा कर रहे थे। मेरा उदेश्य जानकर वो बोले विवशता में ही लोग इस टेªन से सफर करते है।सत्य ही कहा उन्हांेने क्योंकि मेरा जाना अति आवश्यक था भला मुझसे ज्यादा विवश व लाचार कौन हो सकता है? डॉ0 गुल बोले वास्तव में जम्मू में डोगरी ही एक मात्र भाषा नहीं है अपितु कश्मीर गुर्जरी बदराबसा आदि कई भाषाएँ है। मुझे थोड़ा अचरज हुआ कि गुर्जरी तो राजस्थान की भाषा है वो यहाँ जम्मू में कहाँ? वो बोले कि एक जाति होती है गुर्जर जो राजस्थानी आदि भाषाओं का मिक्सचर बोलते है जिसे गुर्जरी भाषा का नाम दिया गया है। और फिर वहाँ बैठे सभी यात्री गण डॉ0 करणसिंह की प्रशंसा करने लगे जिनकी वजह से आज डोगरी भाषा का इतना विकास हो सका। डोगरी की अपनी लिपि थी टाकरी जो चल नहीं पाई और देवनागरी लिपि में लिखी जाने लगी डोगरी भाषा भी। डॉ करणसिंह की भी मातृभाषा डोगरी थी। इन सबकी बातो की लहरतरंगो और जीजा साली की हँसी ठिठोली के बीच थकी हारी मैं जम्मू पहुँच गई। स्टेशन पर वैद्यनाथ जी निहारिका, अंशु के साथ खड़े थे। वहाँ से हम लोग ऑटोरिक्सा में बैठकर घर की तरफ चल पड़े। पहाड़ो को काट छाँटकर बनाया गया पर्वतीय शहर जम्मू की सुन्दरता ही निराली है। पूरा शहर उँचे नीचे वृक्षो से भरा था। ऐसा लग रहा था मानो जंगलो के बीच तवी नदी से निःसृत सहस्त्रदल कमल अपनी समस्त पंखु्ारियों के संग विहँस रहा हो। जम्मू विश्वविद्यालय मनमोहक लालित्यपूर्ण एवं एक ही रंग के भवनांे को देख मंत्रमुग्ध सी हो गई। वहाँ की कारीगरी का अनुपम नमूना था अभिनव थियेटर जिसके बगल में डॉ लाभ जी का घर था। वर्माजी का मन मयूर तो प्राकृतिक इस हरिताभ सम्पदा को देख नृत्य करने लगा। जम्मू की इस प्राकृतिकता को देखने की उग्र लालसा के कारण ही वे हाईकोर्ट का अपना सारा केस जूनियरों के हवाले कर मेरे साथ चल पड़े थे। अपने साथ उनको ले जाने का ये प्रलोभन सबसे अच्छा था। उस दिन जम्मू में सूरज नही उगा था शायद हम लोग उगनेवाले थे उस सलाम में जम्मू की जवानी जैसे वावली हो गई थी। दिगभ्रान्त झंझावेग सर्द हवा का झांेका कभी-कभी रिमझिम फुहार मेघाच्छन्न आकाश की छाँव धरती पर पड़ रही थी सब कुछ छिपा छिपा

सा जैसा। और उस दिन निहारिका के हाथ की बनी गरम गरम काँफी-अंशु की मीठी-मीठी बाते और लाभ जी का प्रेमिल संभाषण के साथ हम सभी ने अपने आप को बंद कमरे में विस्मृत कर दिया। डुग्गर के इतिहास में जम्मू राज्य बहुत महत्वपूर्ण था जबकि इस राज्य का शासक राजा मालदेव अपने प्रतिदून्द्वी को पराजित कर दिया था। इस वंश के राजा रणजीत देव ने प्रदेश के समस्त राज्यों को अपने अधीन कर एक सुदृढ राज्य की स्थापना की थी। मगर रणजीत देव के उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुए। पंजाब नरेश रणजीत सिंह ने डुग्गर को अपने राज्य में मिला लिया। डोगरी के वीर खालसा राज्य के विरूद्ध एक छापामार युद्ध आरंभ कर दिया। अतंत विवश हो डुग्गर प्रदेश विश्वपात्र डोगरा सेनानायक गुलाबसिंह को सौंप दिया गया और उन्होंने थोड़े समय में ही डुग्गर को छोटे-छोटे राज्यों में विलम कर जम्मू को सुदृढ बना लिया। डॉ सत्यपाल श्री वत्स अनवरत रूप से हम लोगों को जम्मू का इतिहास बता रहे थें। मुख्यतः डुग्गरों का जीवन दो भागों में विभक्त है। शहरी जीवन, ग्रामीण जीवन डुग्गर, संस्कृति की झलक मुख्यत ग्रामीण क्षेत्रो में ही बची है। प्राचीन काल से डुग्गरो की धरती भारतीय संस्कृति को पल्लवित पुष्पित करने के लिए उर्वर बनी रही। संस्कृत हिन्दी व डोगरी के प्रख्यत विद्वान डॉ वत्स के यहा बैठ कर हम लोग बातें कर रहे थे। उनके अनुसार डोगरी साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय राणा रणवीर सिह को जाता है। क्योंकि उन्होंने ही डोगरी का विद्याविलास प्रेस खोला जहाँ से हिन्दी संस्कृत व डोगरी की पुस्तकें प्रकाशित होती थी। धाराप्रवाह सत्यपाल जी बोलते रहे जैसे डुग्गर संस्कार का वो साकार रूप हो। उनकी पत्नी कॉफी बनाकर ले आई। स्नेह व आदर से बनी उस कॉफी की मिठास में सांस्कृतिक मधुरिमा भी मिली हुयी थी। अत्यधिक प्रेमभाव से उन्होंने भोजन करने का आग्रह भी किया- डोगरी भोजन दाल भात अंबल। वहाँ की साहित्यिक स्थिति जानने के उदेश्य से मैने पूछा-वत्सजी डोगरी में कौन-कौन सी विधा में लिखी जाती है? उन्होने कहा- डोगरी में सभी विधाओं में लिखा गया है। बेदपाल दीपजी को गजल का सम्राट कहा जाता है। उनका असते बनजारा में गजलो की मौलिकता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये गजलें सिर्फ डोगरी में लिखी जाती है या लिखी जा सकती है। क्या ऐसा भी होता है कि लोग आपस में डोगरी में बात करने में संकोच महसूस करते हो या हिन्दी-इंगलिश को अपनी शान समझते हो- मेरे इस प्रश्न पर वत्स जी कुछ ठिठक गए फिर बोले देखिए मातृभाषा तो माँ के दूध के साथ अंतर में उतर जाता है। जिस व्यक्ति को अपने अतीत का ज्ञान न हो वो मृतप्राय हो जाता है। डॉ लाभ निहारिका अंशु सभी हमारी बातें सुन रहे थे जलपान चल रहा था। जम्मू विश्वविद्यालय की डोगरी विभाग की प्राध्यापिका डॉ बीणा गुप्ता ने कहा डोगरी में उत्तम स्तर का साहित्य है। इस भाषा में गजलों की भी उत्तम पकड़ है। कला का पक्ष समृद्ध व भाव प्रौढ है। बीणा जी यहाँ महिला साहित्यकारों की क्या स्थिति है? मैंने अपनी सहज उत्सुकतावश पूछ लिया। इस समय हम सभी बौद्ध अध्ययन विभाग में डॉ लाभ के चैम्बर में बैठे बातें कर रहे थे। चाय की चुस्की लेते हुए अपनी मोहक मुस्कान के साथ बीणाजी बोली अभी हम लोगो ने 91 से 93 तक प्रत्येक वर्ष महिला साहित्यकारों का सम्मेलन करवाया। हमने पूछा- क्या पुरूष भी भाग लेते थे? हाँ क्यों नही वीणाजी ने कहा। बहुत बड़ी संख्या में वो लोग आते थे और हमारे कार्यक्रम को देखते थे और उस पर विचार विमर्श भी करते थे। सच में डोगरी साहित्यिक इतिहास में लेखिकाओं को सम्मानित स्थान मिला हुआ है। वही अनेक भाषाओं में महिला साहित्यकारों के साथ इतिहास में सौतेला व्यवहार ही किया जाता रहा है जब की डोगरी की बात विल्कुल अलग है। डॉ वीणा गुप्ता जम्मू की निवासी है और प्राध्यापिका के साथ-साथ डोगरी संस्थान की सचिव भी है। डोगरी विभागाध्यक्ष डॉ चंपशर्मा अभी तक नहीं आयी थी। उनको ढूँढने के लिए हम निहारिका के साथ डोगरी विभाग में गए जहाँ मिल गई डॉ अर्चना केसर उन्होंने फूल जैसी कोमल मुस्कान के साथ हमारा स्वागत किया और कक्षा भंगकर हमसे बातें करने लगीं। उनके अनुसार- आयु के हिसाब से डोगरी साहित्य ज्यादा समृद्ध है। फिर इसे संविधान में स्थान क्यों नही मिला ? मैंने प्रश्न किया। सुनते ही अजीब से भाव उमर आए उनके चेहरे पर। उनका अंतर चीत्कार उठा- जम्मू में कोई ऐसा लीडर नहीं जिसे अपनी भाषा से प्यार हो। दुख के आवेग से उनका चेहरा तमतमा

उठा और बोली जब तक मंत्री महोदय नहीं बोलेंगे तब तक भाषा के लिए कौन क्या करेगा। हमने पूछा केसर जी डोगरी की पुरानी रीति रिवाज क्या आज के संदर्भ में जीवित हैं। उन्हांेने उत्तर दिया यहाँ पर राजपूतो की संख्या अधिक है और सच पूछो तो अपनी संस्कृति को उन्होंने ही बचा रखा है। अपनी सभ्यता, संस्कारो, रीति-रिवाज और अपनी सांस्कृतिक मूल्यों को अपनी धरोहर की तरह उन्होने संभाल रखा है बाकि के लोग तो टी0वी0 सिनेमा आदि नई सभ्यताओं में बहने लगे है। तब तक एक गरिमामयी व्यक्तित्व ने दरवाजे से झाँका और उसे देखते ही केसरजी उठकर खड़ी होती हुई मेरा परिचय देने लगी तभी उनको बीच में ही टोकते हुए चम्पाजी बोली हाँ इन्हें मैं जानती हूँ। और मधुर मुस्कान के साथ अपने चेम्बर मे आने का निमंत्रण देकर चम्पाजी चली गई। और मै वैद्यनाथजी की कृतज्ञ हो उठी क्योंकि मेरे आने का प्रयोजन साहित्य अकादमी का उदेश्य आदि से उन्होंने वहाँ सबको अवगत करवा दिया था। इसलिए मैं जहाँ भी जिनसे मिलने गई सभी मेरे सहयोग के लिए पहले से तैयार दिखे। डोगरी विभागाध्यक्ष डाँ चम्पा शर्मा बोली शेफालिका जी नारी अपने व्यक्तिव से सब कुछ प्राप्त करती रही है। वैसे तो महिला की स्थिति हर जगह कमो बेश बराबर है चाहे कोई भाषा हो या समाज। जिसके पास क्षमता है, पावर है वही इस चक्रवात से बच सकता है। बेंगवती नदी के इस प्रवाह को रोक सकता है। अन्यथा जो कमजोर या क्षमताहीन हो वो भला कैसे रोक सकेगी इन्हंे। और फिर वो आपबीती सुनाने लगी। हम तीन बहनो में सबसे बड़ी मैं हूँ। परिणामस्वरूप दोनांे छोटी बहनो की तुलना में मेरी शिक्षा दीक्षा बहुत ही साधारण ढंग से हुई है। मुझसे अच्छी सुविधाएँ उन दोनांे बहनो को मिला फिर भी आज मै यहाँ तक पहुँच गई। तभी मेरा मानना है कि महिलाओं का आत्मविश्वास ही उनको योग्य बनाता है यही उनका सब कुछ है। डोगरियों में भी बेटी को कोई महत्व नही दिया जाता है। कुंडलियाँ बनती है तो सिर्फ बेटो की ये तो पूर्व जन्म का संस्कार है कि बेटियाँ आगे बढ़ जाती है। चम्पाजी का आत्मविश्वास देखकर मैं भावनाओ मे बहने लगी। मुझे याद आने लगा अपने गुजरे हुए कल और मेरा मन बोल उठा सच ही तो कह रही है चम्पाजी। सदा यही तो होता है हर जगह हम बेटियों के साथ । जम्मू विश्वविद्यालय पं्रागण निर्मित सारे भवन एक ही तरह के थे पहाड़ो को काट काट कर पूरे शहर का निर्माण किया गया था। वैसे तो कुछ पर्वतीय क्षेत्र जैसे दार्जिलिंग, हरिद्वार, ऋषिकेश व राहक्षेत्र मैं घूम चुकी हूँ पर जो बातें मुझे जम्मू में दिखी वो और कहीं नहीं दिखाई पड़ी। पहाड़ांे को काट छाँटकर सिनेमाहॉल स्कूल, कॉलेज, मंदिर आदि बनाये गये थे। वहाँ लोग सड़को पर चलते नहीं अपितु चढते थे। सिर्फ चढाई-उत्तराइ,्र सुख-दुख ज्वार भाटा। जामवन्त की गुफा से लेकर बागेबाहु तक जीर्ण शीर्ण तवी नदी की मचलती वक्र धारा मन को मोह लेती है। इस प्राकृतिक एव पर्वतीय क्षेत्र में लोग प्रकृति के कितने समीप है। ऐसा लगता है जैसे प्रकृति से इनका एकाकार हो गया हो। दिल्ली विश्वविद्यालय के अंवेडकर कॉलेज के प्राचार्य पातंजलिजी ने बहुत अच्छा कहा प्रकृति मानव जीवन का अकाटय अंग है। पृथ्वी से जुड़े प्रत्येक साहित्यकार वो चाहे किसी भी भाषा के क्यों ना हो प्रकृति के साथ उनके भावांे का अदभुत तालमेल बना रहता है जैसे नायिका उदास होती है तो प्रकृति भी उदास हो जाती हैै, नायिका हँसती है तो प्रकृति भी विहुँसने लगती है। पर्यावरण शब्द तो पहले से ही है मगर उसका अर्थ लोग अब समझने लगे है। तो क्या अब लोग प्रकृति से विमुख होते जा रहे है? मेरे इस प्रश्न के उतर में पातंजलि जी के चेहरे पर एक फीकी सी मुस्कान उभर आई और उन्होने कहा मनुष्य जितना अन्तमुखी होता जा रहा है उतना ही वो प्रकृति से दूर और दूर होता चला जा रहा है। आजकल मनुष्य सिर्फ अपने लिए सोचने लगे है तभी तो उनकी संवेदनाएँ भी खत्म होती जा रही है और यही सत्य है शाश्वत है और वही ध्रुव है और यही ध्रुव सत्य है।मुझे स्मरण हो आया मेरा छोटा बैटा संजीव पर्यावरण विषय को लेकर ही दिल्ली विश्वविद्यालय से पटना के अन्तराष्टीªय संस्था तरू मित्र का वरिष्ठ नायक ही नहीं अपितु अभिन्न मित्र बन बैठा। पेड़ पौधांे की चेतनाओं का स्पर्श उसकी प्रत्येक साँस महसूस करने लगी थी। फादर रॉबर्ट के तरूमित्र से जैसे उसके जीवन को एक मित्र मिल गया था। पातंजलिजी की बातें कहीं न कहीं मेरे हृदय में घर कर गयी मानव के हृदय में कुछ भी संचित है उसी की अभिव्यक्ति तो वो करता

है। उधार की अनुभति कदापि दूसरे के हदय को स्पर्श नहीं करते। जिसने अपनी संपूर्ण जीवन शहर में बिताया हो और लिखने लगे ग्रामीण परिवेश पर तो वो उधार की भावनाएँ अंाशिक सत्य भले ही हो जाए पर पूर्णता कभी नहीं आ सकती। साहित्य अकादमी के सचिव श्री रमेश भसीनज ने कहा था डोगरी संस्थान के निदेशक श्री नीलांबर देव शर्मा से आप अवश्य मिलना। सुदर्शन व्यक्तित्व शालीनता और संस्कृति के प्रतिमूर्ति थे नीलांबर जी। 16.2.94 को डोगरी संस्थान की स्वर्णजयंती थी विश्वविद्यालय में। मुझे भी निमंत्रण कार्ड मिला जो डोगरी भाषा में छपा था कुछ इस प्रकार। 'मान जोग जनरल के0 वी0 कृष्णाराव राज्यपाल जम्मू कश्मीर होर होउन तुसेभी शामल होने दा नवेदनन ऐ। अभिनव थियेटर में शाम के कार्यक्रम की तैयारी चल रही थी। वहीं पर नीलांबर जी, शीराज के संपादक श्री शिवराज दीपजी और डोगरी के भीष्म पितामह श्री रामनाथ शर्मा क्षेत्रीय पदाधिकारी श्री ध्यानसिंह और प्रो0 कुलभूषण कायस्था आदि कितने ही उोगरी के मूर्धन्य साहित्यकारों से मुलाकात हुई। चमकते नीले सूट में नीलांबर जी हम लोगों के साथ ही ख्ुाले आसमान के नीचे गुणगुणी धूप में घास पर पालती मार कर बैठ गए। उनके मन में जरा भी बड़प्पन या घमंड नहीं था। स्मरण हो आया बिहार का गीमामय व्यक्तित्व डॉ पूर्णेन्दु नारायण सिन्हा। उाक्टर के साथ-साथ वो बिहार के उद्योगमंत्री भी थे। लोग कहते हैं कि कायस्थ बड़े कविकाठी अर्थात टेढे होते है जो हमेशा दूसरों की आलोचना करते रहते है और अपना ही फायदा देखते है मगर व्याकरण का नियम ही है अपवाद और डाउक्टर साहब वही अपवाद थे। उनका निश्छल हदय एक शिशु के समान सरल व सहज था। वे हमेशा दूसरों की सहायता के लिए तत्पर रहते थे। घमंड और अहंकार ने तो उन्हें छुआ तक नहीं था। दीदी अर्थात उनकी पत्नी के अनुसार एक बार वे लोग किसी पार्टी में गए थे। वापसी के समय सिन्हा जी सबसे हाथ जोंड कर आग्रह करने लगे कि आप भी आइए हमारे घर, आए आप भी आइए कभी मेरे घर। इतना सुनते ही लोगों के ठहाके गूँजने लगे तब उन्होने झेपते हुए कहा अरे ये तो मेरी पत्नी है और उनके चेहरे पर एक निर्मल मुस्कान सी थिरक उठी। आज वही निर्विकार छवि मुझे नीलांबर जी में नजर आ रही थी। सभी चाय की चुस्कियों में डूबे हुए थे मगर मेरी चाय जस की तस पड़ी थी और मैं नीलांबर जी के शब्द प्रवाह में बहती जा रही थी। उनके शब्द मेरे कानों में गूँज रहे थे। उोगरी वालों ने देश के लिए जान की बाजी लगा दी शेफालिका जी जम्म्ूा बन्द हो गया सब कुछ बन्द हो गया डोगरी हमारी माँ है लेकिन संविधान में स्थान नहीं मिला ये सब राजनीतिक मामले हैं जिसे सबसे ज्यादा अपनाना या जानना चाहिए उसी से हम दूरी बनाए रखते है तभी तो कश्मीर को पहले मान्यता मिल गई वही डोगरी का कुछ नहीं हो पाया। आज विश्व में पहचान एक समस्या बन चुकी है। मिजोरम, नागालैंड, पंजाब आदि अपनी पहचान बनाने के लिए नित नई कोशिशों में लगे हुए है। आडवानी जी ने आश्वासन दिया और कहा कि डोगरी को संविधान में स्थान मिलना चाहिए तो नरसिंहाराव ने कहा कि आप लोगों को हिन्दी को अपनाना चाहिए वो भी इतनी सहजता से बोले जैसे संगीत का सरगम हो आश्वासन भी दिया पर बहलाने वाली बातांे जैसे वो दुकानों के बहार बोर्ड लगा देखती है न आज नगद कल उधार बस इसी तरह का आश्वासन मिलता रहता है कल ओम गोस्वामी जी भी अपने दर्द को छुपा ना सके और बोल पड़े हिन्दी साठी दादी ऐ तो डोगरी ऐ माँ दादी थाहर दादी एते माऊर थाहर माँ अर्थात हिन्दी अगर दादी है तो डोगरी हमारी माँ है इसलिए दोनांे का अपना अपना अलग स्थान है हम अपनी माँ को कैसे छोड़ सकते है? राजीव सत्यवती कॉलेज दिल्ली के इतिहास विभाग में अध्यक्ष है उसने कहा माँ मुझे साहित्य अकादमी का उदेश्य बहुत अच्छा लगा क्योंकि जो अपनी मातृभाषा से कट जाता है वो राष्ट्रभाषा से भी कदापि प्रेम नहीं कर सकता। जो अपनी माँ को आदर नहीं दे सकता वो भला भारत माँ को कैसे आदर दे सकता है? सत्यवती कॉलेज के प्राचार्य भीमसेन सिंह जी भी भाषा के प्रति बहुत सजग रहते थे। डॉ स्वरूपचन्द ने कहा था अपनी भाषा छोड़ना अपनी माँ को त्यागने जैसा है। मैथिली, डोगरी, राजस्थानी, कोंकणी, पंजाबी, भोजपुरी आदि सभी भााषाएँ मिलकर हमारी राष्ट्रभाषा को समृद्ध बनाती हैं जिस तरह सारी नदियाँ जाकर सागर में मिल जाती है और सागर भी सबका साथ पाकर और भी

समृद्धशाली बन जाता है अगर ये सारी नदियाँ सागर से न मिले तो सागर का भी संकुचित होना तय है। स्मरण हो आता है जब हम दोनो मम्मी पापा के साथ इलाहाबाद स्वर्णपदक लेने जा रहे थे पता नहीं क्यों टे्रन खुलते ही मैं रो पड़ी थी। अन्दर से अपने आप को बेहद कमजोर महसूस करने लगी थी। अच्छी तरह से रो लेने के बाद ही मेरा मन शांत हो पाया। शायद अपने बच्चों को साथ न लाने की असमर्थता और विवशता का दर्द आँसू बन आँखो के रास्ते बाहर आकर मेरे मन को ठहरे हुए पानी की तरह स्थिर कर दिया था। मैं शक्ति की उपासक हूँ। और नित्य दुर्गा पाठ अवश्य करती हूँ। शायद तभी माँ दुर्गा ने मुझे विकार मुक्त अर्थात निर्विकार कर दिया है सभी मेरा बहुत ध्यान रखते है जबकी मुझे सबका ध्यान रखना चाहिए कभी कभी सोचती हूँ ये तो स्वार्थ है, स्वार्थ और मैं जिसका जीवन सदैव किसी से भी कुछ प्राप्त किये बगैर सभी पर उत्सर्ग होता रहा हो भला वो कैसे स्वार्थी हो सकता है? आज मैं बहुत खुश थी। एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी जिसके लिए हम लोग इलाहबाद जा रहे थे। माँ पापा भी हमारे साथ थे। इलाहबाद प्लेटफार्म पर पैर रखते ही मैं रोमांचित हो उठी। सुबह तडके ही हम लोग इलाहबाद पहुँच गए थे माँ पापा को स्टेशन पर ही बिठाकर मैं वर्माजी के साथ म्योर कॉलेज ढूँढने निकल पड़ी। ये महज संयोग ही था कि जिस रिक्शे पर हम बैठे थे वो भी इलाहबाद से अनजान और नया आगन्तुक ही था एक घंटे तक हम सिविल लाइन्स में घूमते रहे या यूँ कहे कि भटकते रहे पर कोई परिणाम नहीं निकला। पर मेरा मन खुद ही एक काल्पनिक दुनिया में विचरने लगा और मुझे रोमांचित करता रहा। एक विचित्र ही अनुभूति होती है काल्पनिक संसार में। लगा जैसे किसी घर में धर्मवीर भारती की सुधा चन्दर के पास बैठी रोती होगी। जैसे किसी कम्पाउड में पम्मी आकाश की तरफ देख रही हो 'मैं तुमसे प्यार नहीं करती फिर भी तुम्हारे आगमन की राह देखती रहती हूँ जैसे किसी साइकिल पर धर्मवीर भारती चक्कर लगा रहे हो और फिर अपनी कल्पना की उड़ान पर खुद ही हँस पड़ती हूँ। हाँ ये एक चरम सत्य है कि इलाहबाद की धरती और आकाश के कण कण में साहित्य रचा बसा है। इलाहबाद की गलियों में भटकते-भटकते मैं परेशान हो उठी थी और थोड़ी झल्लाहट भी आने लगी थी। शायद भूख से हमे परेशान देखकर रिक्शेवाले ने कहा साब आप लोग मत घबड़ाइए मैं आप लोगों का खाना अपने घर पर बनाउँगा उसके इतना कहते ही हम दोनो हँस पड़े ये एक साधारण रिक्शेवाले का ही संस्कार नही पावन अपितु संपूर्ण इलाहबाद शहर का प्रतिरूप था और हमारा मन आनन्द से भर उठा। हमारी सारी थकान जाती रही नमन है पावन भूमि शत शत नमन आखिर हम अपना गंतव्य ढूँढने में सफल रहे। वहाँ पहुँचकर देखा सुधाकान्त भाई विजयानगरम हॉल की सफाई में व्यस्त थे। हमें देखते ही मधुर मुस्कान के साथ उन्होंने हमारा स्वागत किया और बोले मैं स्टेशन गया था आप लोगों को लाने मगर आप लोगों को नहीं देखकर निराश होकर वापस आ गया। फिर वो कार लेकर हमारे साथ ही स्टेशन जाकर माँ पापा को लेकर स्टेडर्ड होटल में जहाँ हमारे रहने की व्यवस्था थी हमें वही ठहराया। एक्स सोलीसीटर जेनरल जगदीशस्वरूप पापा के मित्र थे। उन्होंने अपना फिएट हमारी सुविधा के लिए भेजा था सम्मेलन चार बजे शाम को था इसलिए हम लोग तब तक संगम स्नान के लिए निकल गए। यमुना की स्वच्छ लहरों के साथ अठखेलियाँ करती हमारी नाव और नाव में सवार हम चारों बढ़े जा रहे थे पापा जी वहाँ की गुनगुनी धुप का आनन्द लेते हुए शुद्ध सरसों के तेल निकाल कर खुद की मालिश का भी आनन्द लेने लगे। पापा माँ के साथ वर्मा जी भी उल्लसित नजर आ रहे थे और मै .... मैं तो यमुना जल के साथ खेलते हुए अपना भूत, भविष्य और वर्तमान सब भूल गई थी। जैसे मैं शेष हो गई होऊँ मेरा शरीर अति सुक्ष्म हो गया था मैं अस्तित्वहीन होकर उस वातावरण, उस वायुमंडल के पंचतत्व मे बिखरकर घुलमिल गई थी

यमुना का हरा भरा कंचन सा जल और गगा का स्वच्छ धवल जल, दोनों का संगम देख मन मुग्ध हो रहा था। मन कल्पना के सागर मे हिलोरें लेने लगा था। इसके आगे स्वर्ग की सुन्दरता भी जैसे फीकी पड़ने लगी थी। गंगा यमुना का प्रत्यक्ष मिलन और दोनों के मध्य अप्रत्यक्ष सरस्वती का स्नेहाधार .... मेरा संपूर्ण तन-मन जैसे अपूर्व

पुलकावलियों से भर उठा था। ऐसा लग रहा था जैसे यह स्थान इस धरती पर है ही नहीं और मैं सब कुछ भूलकर आत्मविस्मृति की अवस्था मे आने लगी थी। मन कह रहा था एक न एक दिन तो मृत्यु का वरण करना ही है तो आज ही क्यों नहीं? अभी क्यों नहीं?

कितना सौभाग्यशाली, मनोरम होगा ये मृत्युपर्व चारों और व्याप्त हो जायेगी।

और मेरे बच्चे?? मेरा परिवार ?? नहीं! नहीं! हे भगवान! एक कचोट सी उठती है। काश मेरे बच्चे भी होते अभी मेरे साथ! एक साथ मिलकर कितनी अठखेलियाँ करते .... हमारे जीवन में ऐसा सुखद व मनोहारी क्षण दुबारा आये या न आये किसे पता...........

एक ठंडी सी आह भरकर मैं पुनः कहीं खो सी गई। संगम घाट पर एक बाँस का मचार बना हुआ था जहाँ पंडा जी अपने दल-बल के साथ डटे हुए थे।

संगम मंे स्नान करने वालों की भारी भीड़ जमा थी, सभी एक दूसरे से पहले अपने सारे पाप धो रक मोक्ष पा लेना चाहते थे। और डूबने से भी डर लग रहा था। इसलिए बारी बारी से पंडा जी का हाथ पकड़कर संगम में डुककियाँ लगा रहे थे .... एक .... दो ..... तीन .... अपने साथ साथ अपने परिवार वालों का भी बेडा पार कर देना चाहते हैं सभी।

संगम स्नान के दौरान, पंडाजी के मतानुसार नारियल चढाना अनिवार्य होता है। पहले से पता नहीं होने के कारण कुछ लोग ही नारियल लेकर आते है और उनके द्वारा चढाये नारियल ही पंडाजी तैर तैर कर इक्टठा करते हैं और सभी भक्तों को अनेकों बार बेचते रहते हैं। अर्थात 3-4 नारियल में ही हजारों भक्तों का काम हो जाता है।

मेरा मन खिन्न हो उठा!

ये कैसा समर्पण, कैसी पूजा, कैसी निष्ठा ??

दुःखी हो गई मैं। फिर मामा ने मुझे समझाया कि भक्त को सिर्फ अपने मन के भावों को देखना चाहिए। पंडाजी क्या करते हैं ये सोचना उनका काम है। भगवान तो भाव के भूखे होत है और मेरा शांत निर्मल मन ॅफिर से अविरण्ल जलधारा में स्मृित होने लगा। आरै मेरे कानों मंे मधुर संगीतमय स्वर लहरियां गूंजने लगी माँ से पापा कह रहे थे - हम लोग वैसे तो बहुत जगहों की यात्राएँ की हैं पर इलाहाबाद की ये यात्रा तो कुछ अलग ही आनन्द की अनुभूति करा रही है। हमारी ये यात्रा हमारी रजनी बेटी के सैभाग्य से हमें करने को मिला है। ये हमारे लिए कितने सैभाग्य की बात है कि हमारी रजनी को आज सवौच्च गद्य लेखन के लिए स्वर्ण पदक प्राप्त होने वाला है। माँ बोली - हाँ ये आपने बिलकुल ठीक कहा। हमने ऐसा तो कभी सोचा ही नहीं था क्योंकि लोग कहते थे कि इसके बच्चे क्या पढेंगें लिखेगें .... मगर पापा बीच में ही बात काटते हुए बोले......... में तो अपपने बच्चों के विषय मंे हमेशा यही सब सोचा करता था। बड़े-बड़े सपने देखता रहता था। तभी तो इसकी जन्मपत्री मंे इसका नाम तेजस्विनी रखा था।

माँ बोली हाँ स्मरण है मुझे - जब आप हजारीबाग मंे मजिस्ट्रेट थे उस समय की बात है। हरनगंज मुहल्ले में रहते थे हम। सन् 51-52 की बात है ये एक ज्योतिषी रजनी की हाथ देख कर कहा था - आपकी ये बेटी कवयित्री होगी। और पापा अपनी मोहिनी मुस्कान के साथ अपने हाथ को आकाश की तरफ एक दार्शनिक मुद्रा में घुमाते हुए बोले - हाँ! छेख लो अब.................

और मेरी अधरों पर भी मुस्कान थिड़कने लगी और में अपने अतीत में विचरने लगी थी।

सच ही तो कहा था माँ ने - उस समय मैं कवयित्री का अर्थ भी नहीं जानती थी सात आठ साल की बालिका मैं हमेशा अपने कल्पना लोक में विचरण करती रहती थी। और मेरे भाई बहन मुझे कबूतरी कबूतरी कहकर चिढ़ाने लगे थे।

मुझे स्मरण है उसी समय मैंने अपनी जीवन की प्रथम कविता-- नहीं - नहीं कविता की कुछ पंक्तियाँ लिखी थी।

पापा हमेशा हमारे विषय में ही सोचते रहते थे और पापा को चिन्तित देख माँ दुःखी हो जाती थी और बोलती थी - रजनी! तुम्हारे रहते पापा को इतना सोचना पड़े ये बहुत दुःखाद है और तुम लोगों के लिए एक चुनौती!

भाई-बहनों में मैं सबसे बड़ी थी इसलिए पापा को खुश रखना मेरा प्रथम कर्तव्य था। मैंने एक योजना बनाई अपनी छोटी बहन दीपमालिका के साथ मिलकर - ये हजारीबाग की ही बात है। उस समय हम माउटर्कोल मंे पढ़ रहे थे, बाद में दोनों बहने मिशन स्कूल में आ गई थी।

पापा हजारीबाग में चार साल तक डिप्टी कलक्टर के पद पर बने रहे। हम दोनों बहनें जैसी ही पापा को चिंतनमुद्रा में देखते पूरे राग-तान के साथ गाने लगते - ‘‘पापा सोचै छथिन दूई पैसा भाई‘‘ और पापा के आगे दो पैसे के लिए हाथ फैला देते थे, पापा को हमें दिए वचन के कारण दो पैसे तत्काल हमें देने पड़ते थ। उन दिनों दो पैसे का महत्व था, अच्छी धनराशि थी जिसमें हम बच्चों को बहुत कुछ मिल जाया करता था।

अपने बनाए इस कविता की एक पंक्ति से हम तीनों बहनों ने पापा से बहुत पैसे कमाए, पापा की सोचने की आदत जाती नहीं थी इसलिए हम दिन भर में एक से दो रूपये तक कमा ही लेते थे।

‘‘ए सिल्वर स्पून इन द माउथ‘‘ ये बिल्कुल सत्य है कि मेरा जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ था। एक राजकुमारी की तरह मेरा पालन-पोषण हुआ। मेरे तन और मन को कभी किसी तरह की चोट न पहुँचे इसका दायित्व मेरे पूरे परिवार ने ली थी।

लाल दाय मेरी सगी बहन से भी बढ़कर मेरे सगी थी और पीसी माँ के साथ मेरे सारे नाज़ नखरे व बाल सुलभ नटवरपर सहन करती थी। पीसी माँ बताती थी कि पापा किसी भी काम से घर से बाहर जाते समय मेरा मुँह देखे बिना नहीं निकलते थे, इसलिए किसी ने मेरे नाम ‘‘छमनकरनी‘‘ (क्षेमकरी एक पक्षी जिसे देखकर की गई यात्रा शुभ मानी जाती है) रख दिया तो किसी ने ‘‘दही कछाँछ‘‘ दही से भरा पात्र इसे भी यात्रा के समय शुभ माना जाता है जैसे - दही टीका रख दिया था।

पापा की सबसे प्यारी बहना थी अम्मी और माँ की प्यारी सहेली। उन्हांेने आपस में ननद-भाभी से भी प्यारा दोस्ती का रिश्ता जोड़ दिया था इसलिए आपस में एक दूसरे को राजरानी कुसमेंस से संबांेधित करती थी। उस जमाने की ये भी एक बहुत प्यारी प्रथा थी कि प्यारे दोस्त एक दूसरे का नाम न लेकर एक ही नाम से एकाकार हो जाते थे।

हम बच्चे उनके इस नाम को बिगाड़कर राजरानी दुसमेंस रख खेल खेल मंे उन्हें खूब चिढ़ाते थे।

पापा की प्यारी बुआ भी हमारे पास ही रहती थी। उन्हें सब दादा बोलते थे। पापा जब तैयार हो कर कार्यालय के लिए निकलते थे तो कार के पास जाकर थोड़ा ठहरकर इधर उधर देखने लगते थे। यह देखकर दादा जोर से मुझे आवाज लगाती थी - कहाँ गई ओ दी छाँछ ....

मेरी पीसी माँ अल्पायु में ही वैधव्यता को प्राप्त हो गई थी। उनके जीवन का एकमात्र प्रकाशपुंज, प्रदीप्त शिखा थी। लाल दाय अर्थात उनकी एक मात्र संतान 'कविता' आदर्श व अनुशासन के ताने बाने। ताने भरनी से पीसी माँ और लालदाय ने मेरे जीवन निर्माण किया।

पीसी माँ बताती थी कि नौ वर्ष की आयु तक मैं भात (उबले हुए चावल) नहीं खाई थी अन्न के बदले सिर्फ दूध, फल, सोडावाटर, लेमनेड आदि।

अब सोचती हूँ शायद यही सब चीजें मिलकर मेरे मन को इस धरती से (इहलोेक) से हटाकर एक अलग ही भावनामय लोक का प्राणी तो नहीं बना दिया?

अचानक मुँह पर पानी के छींटे पड़ने से मेरी तंद्रा भंग हुई - बस! बहुत हुआ, अब हमारी तरफ भी देखो। वर्माजी कह रहे थे। माँ पापा भी हँसने लगे थे और हमारी नाव सूक्ष्मता से स्थूलता अर्थात स्वर्ग से धरती की तरफ बढ़ चली.........

पुराने किल में मूर्तिपूजन के समय मन खिन्न हो उठा क्योंकि प्रत्येक मूर्ति के पास एक एक बाला खड़ी थी जो सबको मूर्ति पर पैसे चढ़ाने को बाध्य कर रही थी।

खिन्न मनै पूजा में लगा ही नहीं और न तो हम ठीक से मूर्तियों को ही देख पाए, मन में बार बार एक ही उथलपुथल मची थी कि कैसे लोग हो गए है। आस्था और भगवान का भी व्यवसाय करने लगे।

चार बजे शाम को तैयार होकर हम सभी विजयानगरम् हॉल पहुँचे। वहाँ बुद्धिजीवियों की अच्छी उपस्थिति थी। अस्वस्थ होने के कारण महादेवी नहीं आ सकी थी। डा0 राजकुमार वर्मा द्वारा उद्घाटन हुआः उनके अभिभाषण के उपरान्त सभी प्रतिनिधि कविगण व लेखकगण अपना-अपना परिचय देने लगे। मेरी भी बारी आई और अपना परिचय मैंने कुछ इस तरह दिया - मैं अपना परिचय क्या दूँ? वैसे मेरा नाम शेफालिका है और मेरी कविताएँ और कहानियाँ ही मेरा परिचय है। तालियों की गड़गड़ाहट से मेरा स्वागत हुआ।

लेखिका कवयित्रि नीरजा रेणू भी अपने पति के साथ वहाँ थी। नीरजा जी से मिलकर बहुत अच्छा लगा। उन्हांेने एक पत्र के माध्यम से मुझसे कहा था कि - आपकी कथा पढ़कर मेरा मन खुशी से नृत्य करने लगता है। और उनकी बातों को लेकर वर्मा जी बार-बार मुझे झेड़ते हुए कहते - शुक्र है कि वो महिला हैं अगर वो पुरूष होती तोे मेरे घर में रोज महाभारत शुरू हो जाता और आज वही नीरजाजी साक्षात मेरे समक्ष ख़डी थी और मेरा मन आनन्द मग्न हो रहा था।

सभी कवियों के साथ साथ मेरा काव्यपाठ भी हुआ। डा0 रामकुमार वर्मा अभिभूत हो बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहने लगे उनकी आँखों से छलकते स्नेह, प्रशंसा और वात्सल्य पाकर मैं धन्य धन्य हो उठी। मेरी पीठ थपथपाते हुए उन्होंने अपने घर आने का निमंत्रण भी दिया।

इलाहाबाद की दिसम्बरी सर्दी लोग बर्फ की तरह जमे जा रहे थे नौ बजे सुबह ही गाड़ी आ गई थी। हम लोग उनके घर साकेत पहुँचे तो पता चला कि वो तो प्रयाग स्टेशन के पास अपनी बेटी के घर रहते हैं। फिर हम लोग वहाँ पहुँचे। हमंे देखते ही वो अखबार छोड़ उठ खड़े हुए। माँ बाप और वर्मा जी से परिचय के बाद बातों में हम लोग इतने मशगूल हो गए लगा जैसे जन्मजन्मांतर से हम एक दूसरे को जानते हों। पापा के बच्चों के बारे में पूछने पर उन्होने मेरे सिर पर वरदहस्त रखते हुए कहा- बस एक शेफालिका सुनते ही में चौंक उठी क्या उनकी बेटी भी.................?

उनकी एकमात्र संतान उनकी बेटी ‘राजलक्ष्मी‘ थी जिनके पास वो रहने तो आ गए थे पर हिन्दू सामाजिक प्रथाओं के कारण असहज महसूस कर रहे थे। बेटी के घर माँ-बाप को नहीं रहना चाहिए वहाँ का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। इस प्रथा को भरसक सम्मान देते हुए कुछ बाहरी खर्चे जैसे- गाड़ी में पेट्रोल आदि भरवाने का काम कर थोड़ी संतुष्टि पा लिया करते थे और बेटी .... बाप से दो कदम आगे ....

माँ की दीर्घकालीन बीमारी देखकर शादी ही नहीं की!

हरबार पापा की बात बीच में काट कर बोलती थी - पापा आप तो साहित्य सृजन में हमेशा देश विदेश घूमते रहते हैं। अगर मैं शादीकर सुसराल चली गई तो माँ को कौन देखेगा?

दोनों को देख, उनके विचार जान मन श्रद्धा से भर उठा। नतमस्तक हो गई मैं।

दूसरे दिन सम्मेलन के मुख्य अतिथि डा0 राम कुमार शर्मा ही थे। उदघाटन के लिए महादेवी वर्मा आमांत्रित थी मगर अस्वस्थता के कारण उनके स्थान पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति प्रख्यात साहित्यकार डा0 बाबूराम सक्सेना पधारे थे।

हम मैथिली के प्रख्यात आलोचक डॉ0 जयकान्त मिश्रा के बगल में बैठे थे। हम दोनों के मध्य बहुत सी बातें हुई, कितने ही आर्शीवाद मिला उनसे। जब डॉ0 बाबूराम सक्सेना के द्वारा मुझे स्वर्ण पदक मिला उस समय मेरे पापा की आँखें नम हो गई! माँ भी भावविभोर हो रही थी। और वर्माजी चुपचाप माँ बाप का गौरवांवित चेहरे को देख रहे थे।

डा0 राजकुमार जी ने मुझे काव्य विनोदिनी की उपाधि से नवाजा। जलपान के समय उन्होने अपने प्लेट से एक समोसा और एक मिठाई मेरे प्लेट में रखते हुए बोले - शेफाली ये मेरा दिया प्रशाद है और मैं जैसे तृप्ति का अनुभव करने लगी ....

प्रदर्शनी देखने जाते समय मेरे कानों में एक स्वर लहराया शेफाली .... मैं अचरज से इधर उधर देखने लगी तो पापा ने संकेत किया- राम कुमार जी मुझे बुला रहे थे - इतने बड़े सम्मान के लिए ढेर सारी बधाई! बाबूराम सक्सेना और जयकान्त जी जैसे उच्चकोटि के साहित्यकारों की बधाई मेरे लिए गोल्डमेडल से तनिक भी कम न था। मैं कृत्य कृत्य हो रही थी।

इन्हीं स्नेह और सम्मान प्रतिफल था कि द्वितीय मैथिली महासम्मेलन प्रयाग में 1977 के सम्मेलन में मुझे महिला विभाग का सभापति मनोनीत किया गया। प्रधान सभापति महाकवि सुमित्रान्नदन पंत थे। वहाँ लगभग बीस विभागों के सभापतियों ने मेरे अतिरिक्त पं. भोला लाल दास, पं. शशिनाथ चौधरी, पं. लक्ष्मीपति सिंह जी, पं. हरिमोहन झा जी, पं. विभूति भूषण मुखोपाध्याय, प्रो0 धीरेन्द्र जी, पं. आधाचरण जी, रामनाथ मिश्र मिहिर जी, पं. शंकर मिश्रजी आदि अनेकों विद्धान उपस्थित थे ‘बटुक में पंतजी के साथ मेरा भी फोटो छपा था मगर शायद मेरा ही दुर्भाग्य रहा कि किसी विशेष परिस्थितिवश ये महासम्मेलन स्थगित हो गया। उस रात .... होटल स्टेंडर्ड का वो कमरा .... हम चारों की आँखों से नींद गायब थी। पूरी रात हम जागते रहे थे। माँ पापा बस मेरी ही बातें करते रहे थे और वर्माजी भी पूरी तन्मयता से उनके मुँह से मेरे बचपन से अब तक का पूरा वृतांत सुनते रहे मेरा जन्म, मेरी शरारतें, मेरी बदमाशियाँ ....

अगली सुबह अशोक नगर स्थित महादेवी वर्मा जी से मिलने उनके निवास पर भी गए थे हम लोग। चारों ओर प्राकृतिक निष्पंदता! पेड़ पौधे, लताएँ जैसे सब की सब शांत साधना में तल्लीन थे। एक तपस्विनी की कुटिया.................

एक किशोरी बाला बाहर आकर बोली - महादेवी जी अस्वस्थ है इसलिए वो किसी से मिल नहीं सकती।

सुधाकान्त भाई ने उस बाला को हमारे विषय में बताया कि मैं अपना स्वर्ण पदक महादेवी वर्मा के चरणों में अर्पित करना चाहती हूँ। हमारी आस्था और समर्पण भाव से देवी द्रवित हो हमें स्वीकार कर लिया और हमारे लिए भगवती का द्वार खुल गया। ड्राईंग रूम में चारों तरफ दीवार से सटा शानदार सोफासेट लगा था और बीच में सुन्दरा सा कालीन और बीच में गोल मेज लगा था। दरवाजे के एक तरफ वीणवादिनी की शुभ्र उज्वल प्रतिमा थी। दीवार पर चारों और विभिन्न साधु-संतों की तस्वीर लगी थी और तत्क्षण ही श्वेत परिधान में आवेष्ठित साक्षात सरस्वती महादेवी प्रकट हुई। दुर्वल काया, आँखों में तैरते सपने, अधर पर मोहक मुस्कान लिए। हम लोग कालीन पर बैठे थे वो भी वहीं आकर हमारे पास ही बैठ गई। सुधाकान्त भाई ने सबका परिचय कराया।

आप अस्वस्थ हैं क्या?? मेरी बातों से उनके अधरों पर फिर से हंसी खिल उठी-अभी तो संपूर्ण देश अस्वस्थ हैं। फिर मेरी अस्वस्थता का क्या अर्थ? उनकी वाणी में। मात्र अग्नि ही नहीं बल्कि धार भी थी जिसकी तपन उनकी वाणी में।

सुबह सुबह जब अखबार पढ़ती हूँ तो वही लूटपाट, हत्या, बलात्कार, ंिहंसा आदि खबर देखकर अखबार छूने का मन नहीं करता या यूँ कहें कि ऐसी खबर पढ़ने की हिम्मत ही नहीं होती है। पता नहीं क्या हो गया है देश को? वर्तमान व्यवस्था के प्रति उनका रोष स्पष्टतः उनके स्वर में प्रस्फुटित हो रहा था।

मेरी पुस्तक बिप्रलब्धा में स्व0 हरिमोहन झा जी द्वारा लिखा - ‘मैथिली की महादेवी‘ पढ़ वो विष्मित हो उठी और मेरी प्रणतचिबुक उठा कर स्नेह से निहारने लगी। मेरी डायरी पर बड़े प्रेमपूर्वक उन्होंने लिखा- तूॅ न अपनी उम्र को अपने लिए कारा बनाना, जाग तुझको दूर जाना - दूर जाना ....

और तभी मेरा यायावरी मन गाता रहता है - माइल्स टू गो .....

आज भी उसी माइल्स के क्रम में जम्मू की वनवीथियों में भटक रही थी मैं। मन में सिर्फ एक ही कचोट थी ... काश.......... कश्मीर जाने का मार्ग मिल पाता। मानव अपनी उन्नति का पथ स्वयं ही अवरूद्ध करने में लगा हुआ है। हमंे तो हमेशा ही सतर्क रहना चाहिए कि जिस आजादी को हमने अनगिनत वीरों की शाहदत से हासिल किया वो हमें छोड़कर वापस जा तो नहीं रहा है? कहीं अनजाने ही हम फिर से गुलाम तो नहीं होने जा रहे है? कहीं ऐसा तो नहीं कि घर में ही आपस में लड़ते लड़ते हम इतने कमजोर हो जाएँ कि बाहरी आक्रमण हमंे पूर्णतः नेस्तोनाबूद कर दे? आज हम तोड़ फोड़ की राजनीति में लगे है, प्रत्येक प्रदेश अपने अपने देश की माँग कर अपने ही देश को विकलांग बनाते जा रहे हैं। कितने असहाय और स्वार्थी होते जा रहे है हम कि अपना सब कुछ खुद ही जला देने पर तुले हुए हैं। हमें वैज्ञानिक शक्तियों की कोई कमी नहीं है मगर मन से हम द्ररिद्र, विपन्न होते चले जा रहे हैं। आज साहित्यकारों व चिन्तकों का चिन्तन संपूर्ण देश व मानवता के समक्ष एक प्रश्न बन कर खड़ा है। आखिर किस तरह से मानव को मानवता के समक्ष लाया जाए। मानव मानव एक हो जाएँ तो राष्ट्र की भूमि के टुकड़े कभी न हो सकेगें।

जम्मू की सुखद उषाकाल, हिमालय की मनोरम उपत्यका और दूसरी तरफ तन्वी नदी की मेखला सदृषधार को हरने के लिए काफी था उस पर बसंत पंचमी का समय प्रकृति की छटा देखते ही बनती थी। हम सब बहन बिहारिका के

साथ कटरा, जा रहे थे। हमारी बस पर्वत श्रृंखलाओं पर बने मदमस्त सर्पिणी जैसे टेढ़े मेढ़े रास्ते पर चली जा रही थी। दूर दूर तक पसरी हरितिमा और कहीं कहीं जंगली नदी की मचलती जलधारा, मधुमय पवन के झोंके मेरे तनमन को सुधासिक्त किये जा रहा था। मेरा मन जैसे उन्हीं वादियों में कैद हो जाना चाहता है, बस जाना चाहता है। इन्हीं पर्वतीय कंदराओं मंे, इन्हीं उपत्यकाओं मंे, वैसे ही जैसे चिरकाल पहले किसी गौतम ने अपना सब कुछ त्याग कर इन्हीं वनवीथियों के मध्य भटकते हुए बुद्धत्व को प्राप्त किया होगा।

प्रत्येक व्यक्ति के अंतरहृदय मे एक सूक्ष्म सा बुद्ध छिपा बैठा होता है मगर सब भाग नहीं सकते। बुद्ध का बुद्धत्व मात्र पलायन में नहीं बल्कि दूसरों के सुख दुख के क्षण में अपने दुख सुख के समर्पण में है। मेरी भी अंत सहृदय उवस्थित एक नन्ही से शेफाली इस दुनियादारी के सारे बंधन तोड़कर मुक्त हो जाना चाहती है..........., भाग जाना चाहती है सारे मोह माया को छोडकर दूर .... बहुत दूर मगर मन मानस उसे अपने उत्तरदायित्व से पलायन की प्रेरणा नहीं देती है।

कटरा जाना था। सुबह सुबह ही सपना निहारिका मेरी बहन तैयार हो गई थी और मधु एक समना और एक मधुलिका, जब भी हम कहीं जाने का प्रोग्राम बनाते है तो सपना पलक झपकते ही हमें तैयार मिलती है और मधुलिका बहुत दर लगा देती है। बेगुसराय की एक घटना याद कर अकेले में भी खूब हंसी आती है। उस समय शंकर बाबू पाहुन बरौनी रिफाइनरी में इंजीनियर थे। हम लोग उनके यहाँ घूमने गए हुए थे। एक दिन हम सबने बारह बजे दिन में मैटिनी शौ पिक्चर देखने का प्रोग्राम बनाया- बातचीत के क्रम में शंकर बाबू ने कहा- मधु्ा आज तक कभी पूरी फिल्म नहीं देख पाई है क्योंकि वो तो तैयार होने में ही आधा पिक्चर निकाल देती है। इतना सुनते ही मैं भागी मधु के पास और उसे तैयार होने में उसकी मदद कर जल्दी ही बाहर ले आई उसे तक तक 12.30 बज चुके थे। जल्दी जल्दी हम गाड़ी में बैठ गए। शंकर बाबू बड़े आराम से एम्बेसेडर स्टार्ट करते हुए मीठी मुस्कान के साथ पूछा- पहले कहाँ चलें? मैंने हड़बड़ाते हुए कहा- पाहुन फिल्म शुरू हो चुका होगा कब का, अब जल्दी चलिए। शंकर बाबू ने कहा- दीदी टिकट तो तीन बजे का है, वो तो मैंने मधु की वजह से झूठ बोला ताकि आप पूरी फिल्म देख पाओ। इतना सुनते ही हम सबकी हँसी छूट गई और मधु ....

मधु में एक सबसे बड़ा गुण है कि वो सबको दिलो जान से चाहती है और सबकी खुशी मंे ही खुश हो जाया करती है।

मैं जब भी अपने बेटे-बहु राजू-जया के पास दिल्ली आती हूँ, फौरन मुझसे मिलने पहुँच जाती है। जम्मू यात्रा के दौरान दोनों ने कितनी सहायता की थी मेरी।

सारी कहानी सुन सपना हँसते हुए कहती है - दीदी तैयार होने में चन्दा भाभी भी फूल दीदी (मधुलिका)से कम नहीं हैं।

हाँ सपना पर जो भी हो लेकिन उसकी पिक्चर नहीं छूट सकती कभी। इस मामले में दीपू, अन्नु, चमनी, इरा सब फिट है। और मेरी जया तो चाहे कैसे भी हो पर पलक झपकते तैयार हो जाती है। आखिर मेरी बहु जो ठहरी!

जया दिल्ली विश्वविद्यालय से पढ़ी, अपने कालेज की सबसे अच्छी छात्रा और श्रेष्ठ खिलाड़ी रह चुकी है, मगर ग्रामीण परिवेश में भी जल्दी ही अच्छी तरह से ढल जाती है। हमेशा घंूघट डाले रखना सबका आदर करना, पैर छूना,

ससुराल में सबके पैर दबाना आदि। अपने संस्कार और विनयशीलता का पूर्ण परिचय उसने ठुमर के विशाल परिवार के समक्ष प्रस्तुत किया है।

उस समय मेरी देवरानियाँ मुझसे कहती थी - दीदी आपने अपनी बहु को भी अपने जैसा बना ही लिया।

मगर क्या? सच में कोई किसी को अपने साँचे में ढाल सकता है भला? ये उसका अपना संस्कार होता है जो जिस परिवेश में पला-बढा हो वहीं से ग्रहण करता है।

अचानक एक झटके से मेरी तंद्रा भंग होती है और ऐसा लगता है जैसे मैं हिमालय की चोटी पर पहुँच गई हूँ। पर वास्तव में ये स्थान हिमालय की चोटी नहीं बल्कि पेटी अर्थात कटरा पहुँच चुके थे हम लोग। वर्मा जी बहुत प्रसन्नचिन्त थे। उनके चेहरे पर तनिक भी थकान दृष्टिगत नहीं हो रही थी। कटरा से आटोरिक्सा लेकर हम लोग वाणगंगा और चरण पादुका की और चल पड़े। वहाँ से माताजी को प्रणाम कर हठयोग से नहीं बल्कि प्रेमयोग माता वैष्णों देवी का अपने अंतरआत्मा में आवाहन किया और चल पड़े उनके दर्शन को।

निहारिका वर्माजी से बोली- पाहुन कई लोगों के कंधे पर विस्तर में आराम से लेट कर ऊपर तक की यात्रा करते है अर्थात पिट्ठू पर बैठकर तो आप भी क्यों नहीं वैसे ही यात्रा करते? वर्मा जी हँसने लगे और बोले- नहीं सपना (निहारिका) में जीते जी लोगें के कंधे पर नहीं बैठूंगा। और हँसी ठहाको से वातावरण खिल उठा, मगर कितनी वेदना छिपी थी इन शब्दों में। बसंत पंचमी के कारण पीले हलुए का प्रसाद बना था।

निहारिका अपने पति और पुत्र को घर में अकेले छोड़ हमारे साथ आई थी अकेली! फिर भी एक पवित्र और मोहक मुस्कान के साथ हमारी सारी सुविधांओं का ध्यान रख रही थी। मेरी प्यारी छोटी बहना है निहारिका मगर उम्र में मेरी बेटी भावना से भी छोटी है और उसी की तरह हमेशा अपनी मोहक मुस्कान से हमारे मन प्राण को प्रफुल्लित करती रहतीइ है। हमारे आने पर निहारिका ही नहीं बल्कि वो तीनों प्राणी हमरे पीछे इतने बेहाल हो जाते है जैसे साक्षात भगवान ही पधारे हों। और हम लोग भी सदैव इसी प्रेम और आदर के लिए जीते है। एक बार इसी बात पर मुझे मेरे जाऊत (देवरानी का लडका) से बहस हो गई थी। मैंने कहा- मुझे कोई प्रेम से नमक रोटी भी दे तो खुशी से खा लूगीं मगर फूले मूँह से मटन पुलाव भी दे तो नहीं खाऊँगी। पर उसने कहा चाची ! मुझे तो मुँह लटकाकर भी कोई मटन पुलाव दे तो मैं खा लूगा। बेशक कोई मुँह फुलाए, मैं तो खाना क्यों छोड़ूँ भला। ओर इन्ही बातों पर हम लोग काफी देर तक हँसते रहे।

गुलशन कुमार का लंगर चल रहा था। लोग भोजन कर रहे थे। हम लोग भी बैठ गए भोजन की पंगत में स्टील की चमाचम थाली से बासमती चावल का भात, राजमा, छोले, दाल आदि बहुत अच्छा भोजन था। मगर परोसने वाले .... की कमी थी। जो ये भी वो खड़े खड़े लोगों को खाना फेंक फेंक कर ऐसे दे रहे थे जैसे लोग अनमने या बेमन से भिखारियों को भीख दे देते हैं। बहुत बुरा लगा मगर सबके अपने अपने विचार! मन ने विष्मित हो कहा- माता की गोद में बैठे लोगों के मन में आतिश्यप्रेम की भावना नहीं जागी। सिर्फ यंत्रवत कार्य में लगे है।

वर्मा जी ने कहा- इनका तो यही काम हैं, मशीन की तरह दिन भर एक ही काम करना। फिर भला भावना कहाँ से और क्यों आए? कटरा में डोगरी बोने वालों की संख्या ज्यादा थी। सभी लोग विस्तृत हृदय के स्वामी थे। शायद ऊँचे ऊँचे पहाडों में रह कर पहाड़ जैसी ही विशाल हृदय व विचारों के स्वमी बन गए थे। सच तो है जहाँ इस नैसर्गिकता का अभाव होता है वहाँ के लोगों पर फिल्मों और दूरदर्शन का प्रभाव आ जाता है।

डोगरी साहित्यकारों में डोगरी को संविधान में स्थान नहीं मिलने का आक्रोश स्पष्ट दिखाई दे रहा था। और मैथिली .... कवि कोकिल विद्यापपित की भाषा होते हुए भी आज तक मैथिली को समुचित स्थान नहीं मिल पाया है। जबकि मैथिली के लिए अपने अपने स्तर से सभी लड़ते रहे हैं डॉ. जयकान्त मिश्र, डॉ. कृष्णकांत मिश्र, भाला लाल दास, सुमन जी, अमर जी, मणिपदम जी, बाबू साहेब चौधरी और स्वयं डॉ. जगन्नाथ मिश्र आदि अनेकों व्यक्ति व संस्थाएँ मगर क्या मिला?

मैथिली सीता सदृष है। सब कुछ पाकर भी कुछ नहीं पाने की नियति से ग्रस्त एक अतिविशिष्ठ व अनुपम गुग वा डोगरी साहित्यकारों में। महिला साहित्यकारों के प्रति आदर व सममान का भाव। नीलांबर जी ने कहा था - जिस तरह पतझड़ के बाद वृक्षों से पत्ते अपने आप गिरते रहते हैं उसी तरह नारी हृदय से प्रेमपूर्ण भावनाएँ सहज ही छलकती रहती है जबकि हम पुरूषों को बहुत सोचना पड़ता है। मेरे विचार से या मेरी जानकारी में महिला साहित्यकारों की इतनी स्वाभाविक व सुन्दर समीक्षा विश्व की किसी भी भाषा में नहीं हुई होगी। प्रत्येक लेखक व समीक्षक डोगरी महिला साहित्यकारों का निष्पक्ष रूप से बड़ाई करते नजर आ रहे थे।

ये महज एक संयोग ही था जो प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर जी की भांजी से मुलाकात हो गई थी जो पंजाब से जम्मू आरक जम्मू की ही बन कर रह गई थी। लेकिन फिर भी एक अलग ही वात्सल्य एक संस्कृति उनके अपने व्यवहार में अवगुंठित था।

डुग्गर समाज की एक खास और बहुत अच्छी बात थी कि वहाँ दहेज प्रथा का प्रचलन नहीं था। दहेज के नाम पर परिवार वालों के लिए कपड़े व कुछ वर्तनों का ही प्रचलन था हाँ लड़कियों की पढ़ाई और योग्यता अवश्य देखते थे। आते जोंत कहीं कहीं दहेज प्रथा देखने े को मिल जाती है पर डुग्गर समाज की ये बहुत बड़ी बात थी। जो मेरे मन को भा गई थी। मन में हल्की हल्की तरंगें सी उठ रही थी। जीवन में कभी कभी ऐसे दुर्लभ क्षण भी आते हैं जब मानव को अचानक ही मणिरत्न की प्राप्ति हो जाती है। मेरे साथ तो ऐसा ही हुआ- मेरी द्वितीया पुत्री बंदना (पिंकी) दरभंगा मेडीकल कालेज चतुर्थ वर्ष की छात्रा थी। मैं डॉक्टर दामाद नहीं चाहती थी क्योंकि अक्सर देखा गया है कि जहाँ पति पत्नी दोनों डॉक्टर होते है वहाँ लेडी डॉक्टर की प्रेक्टिस ज्यादा चलती है जबकि उसके डॉक्टरपति के पास मरीजों की संख्या बहुत कम होती है ऐसी परिस्थिति मे परिवार में एक व्याधात आ जाता है जिससे खुशी और सुख का कण क्रमबद्ध नहीं रह पाता।

मेरे बाबूजी (चाचा) स्व0 ललितश्वार मल्लिक के दूसरे पुत्र डॉ. अतुल कुमार मल्लिक दरभंगा मेडीकल कॉलेज में व्याख्याता थे। छोटे भाई डॉ. कृष्ण कुमार मल्लिक वहीं पर रेसीडेंट सर्जन थे। मेरे भाव समधी मंलगवा निवसी राजेन्द्र बाबू मेरे भाई डॉ. कृष्ण कुमार मल्लिक के पास मेरेी बेटी बंदना के प्रति अपने ज्येष्ठ पुत्र डॉ. कौशलेन्द्र कर्ण का उपन्यास (रिस्ता) लेकर पहुँचे थे। डॉ. कौशलेन्द्र कर्ण चेकोस्लोवाकिया से डॉक्टरी पढ़कर काठमांडों मेडीकल कॉलेज में व्याख्याता थे। अपने इसी पुत्र के लिए राजेन्द्र बाबू सुयोग्या डॉक्टर कन्या की तलाश में थे। पता नहीं किस माध्यम से उन्हें बंदना के बारे में पता चला और वो रिश्ते के लिए डॉ. कृष्णकुमार के पास पहुँच गए थे।

डॉ. क ृष्णकुमार ने बड़े सहज भाव से उनसे पूछा- क्या आपने लड़की को देखा है? उन्होंने कहा- नहीं! हमने लड़की को नहीं देखा तो नहीं पर उसके बारे में सुना है कि अच्छी लड़की है। फिर डॉ. कृष्णकुमार ने कहा- सबसे पहले आप जाकर लड़की को देख लीजिए उसके बाद हम लोग रिश्ते की बात करेंगे। और उनको लड़की देखने की तरकीब भी बता दी।

सहरसा से जब भी कोई मोवक्किल दरभंगा जाता, मैं एक पत्र या कुछ संदेश जैसे मिठाई या कोई अन्य पकवान बनाकर अपनी बेटी बंदना के लिए अवश्य भेजती थी। वो मेडीकल कालेज होस्टल में रहती थी। शांत, धीर, गंभीर बंदना साक्षात सरस्वती का अवतार है। नृत्य, गीत, संगीत, नाटक और वीणा की साधना ही उसका जीवन था। भावुक इतनी कि होस्टल की दीवार पर अपने माता पिता की फोटो लगाकर उनके ही भगवान मान बैठी थी। कॉलेज आते जाते उन्हीं के आगे अपना माथा पटक पटक कर प्रणाम करती रहती थी।

पढ़ने लिखने में मेरी छहो संतान बहुत प्रतिभाशाली व मेधावी थे। सहरसा में सभी मेरे घर को सरस्वती का मंदिर कहते थे। मगर राजीव और बंदना तो कुछ खास ही व्यक्तित्व के थे। वो दोनों चौबीस घंटे में से अटठारह घंटे पढ़ते रहते थे।

भावना और तरूणा यदि महारानी लक्ष्मीबाई, रजिया सुल्तान थी तो बंदना और सुपर्णा लक्ष्मी और सरस्वती मगर फिर भी अंशतः सब में सभी गुण विराजमान थे।

मेरा जन्म 09/08 अर्थात क्रांतिकारी दिवस को हुआ था इसलिए मेरे अंदर हमेशा क्र्ांति का ज्वार सा लहराता रहता था मगर वर्मा जी शांत, धीर और संगीतमय। जो अवगुण मेरे अंदर हैं वो उनमें नहीं और जो उनमें है वो मुझमें नहीं। हम दोनों वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं।

डॉ. कृष्णकुमार ने मेरा कोई पुराना पत्र राजेन्द्र बाबू को देते हुए कहा - आप मेडीकल कॉलेज होस्टल जाकर बंदना से कहिए कि मैं सहरसा से आया हूँ और इस बहाने आप उसे देख लेंगे।

आज भी बंदना बोलती है कि मम्मी उस दिन मेर इम्तिहान था, और उस समय मैं नहाने जा रही थी सो जल्दी जल्दी में जैसे तैसे उनके सामने चली गई थी। पता नहीं उन्होने मुझमें ऐसा क्या देखा और मुझे पसंद कर लिया।

मेरा पुत्र राजीव और मेरा भाई असीम दोनों उपन्यास (रिश्ते) की औपचारिकता के लिए जब पहली बार मंलगबा गए तो उनको तनिक भी क्षोभ नहीं कि दोनोें कुआंरे बालक हैं। ऐसा माना जाता है कि ऐसे काम के लए शादी शुदा लोगों को ही जाना चाहिए।

राजेन्द्र बाबू मूलतः दरभंगा जिला शिवनगर निवासी थे जो मंलगवा जाकर बस गए थे। वो दोनो पति पत्नी मलंगवा अंग्रेजी हाई स्कूल में शिक्षक थे।

राजीव और असीम का स्वागत-सत्कार कते हुए उन्होंने उसी रात सिद्धांत और विरार का दिन दे दिया। महान आश्चर्य की बात थी ये आज के युग की जहाँ बेइमानी ही जीवन मूल्य बन गया हो, बेटी के पिता को बार बार दौड़ाना सामाजिक स्टेटस बन गया हो, वहाँ ये तो दुनिया का आठवां आश्चर्य ही था खुद से उपन्यास भेजना और पहली बार घर आए दो कुंआरे बालक के हाथ सिद्धांत का दिन तय कर दे देना अपने आप मे बहुत बड़ी बात थी।

विवाहोपरांत एक बार हम सब मलंगवा गए थ। वो हमें जनकपुर धाम ले गए दर्शन के लिए। मगर उनके घर पर समघन सत्याभमा देवी का प्रेमपूर्ण व्यवहार समधीजी का आदर सत्कार, ननद भाभी का स्नेह देखकर तृप्त हो गए हम सब। अंतरमन ने कहा ये घर जनकपुर धाम से कमतर तो नहीं।

विवाह के समय बारातिंयों में से किसी ने कहा - हम लोग तो सहरसा जिला विवाह कर लेते हैं बिना दहेज मगर सहरसा वाले कभी बिना दहेज शादी नहीं करते मगर समयानुकूल प्रप्युतर भी दिया हमने।

बंदना और कौशलेंद्र जी का एक साथ लंदन जाना तय हो गया था घर के बडे बेटे बहू का यूं चले जाना घर में दो कुआरी बेटियॉ समीता बबीता और छोटा बेटा अनिल समधी जी बहुत चिंतित थे। वंदना ने सास-ससुर की चिन्ता महसूस की और पति ओर ससुर जी के साथ धनबाद चली गई जहाँ डॉ. कृष्णकुमार और मेरे पापा जी थे। वंदना ने कहा - नानाजी हम पिन्टू मामा के साथ समीता का उपन्यास लेकर आई हूँ और पापाजी ने भी उसी शाम सिद्धांत कर नौंवे दिन विवाह का दिन तय कर दिया और उनके साथ ही वापस पटना आ गए थे। और फिर समाना आ गई थी मेरे मायके की सबसे छोटी बहू बनकर।

आज मेरे पिताजी नहीं रहे! वे इस आसार-संसार से महाप्रयाण कर गए, मगर अंतिम क्षणों में बेटे बहु चान्द, अन्नु और समीता द्वारा की गई सेवा सबके लिए एक दृष्टांत बन कर रह गया।

दहेज नहीं लेना हमारा पारिवारिक संस्कार था। हमारे समधियों का पारिवारिक संस्कार था और जम्मू के लोगों में वही संस्कार पा मैं भावविभोर हो उठी। मन ने कहा- इस मिलावटी दुनिया में अभी भी सुचिता है। सबसे अच्छी और सराहनीय बात तो ये थी कि जम्मू समाज में लोग लड़कियों की योग्यता देखते थे।

यही भाव मिथिला में थोड़ी थोड़ी साँसे लेने लगा हैं। नौकरी की योग्यता भी अब एक मापदण्ड बनता जा रहा है पर बहुत आहिस्ते आहिस्ते जैसे - छठ महापर्व के सुबह का अर्ध्यवाला सूरज।

समस्त जम्मू शहर में एक लहर सी उठ गई थी मेरे आगमन की मैं साहित्य अकादमी के प्रति कृतज्ञ व नमित हो जाती हूँ। कितनी अच्छी योजना है एक भाषा का दूसरे भाषा के संस्कार, संस्कृति जानने का और लोगों को इसके लिए प्रेरित करने का। एक मैत्री भाव, विश्वबन्धुत्व का भाव भर देता है संपूर्ण जन मानस में और संपूर्ण देश मंे। और आभारी हूँ मैं लाभजी का जिन्होने मेरे आगमन की खबर देकर संपूर्ण जम्मू को दलमलित कर दिया था।

संस्कृत के विद्वान नेपाल वासी डॉ. केदान नाथ शर्मा जी लाभ जी के घर पर मुझसे मिलने पहुँचे। बहुत देर तक जम्मू के विषय में उनसे बातें होती रही।

जम्मू के लोग परिश्रमी व कर्मठ होते हैं। शरीरिक व मानसिक कलंाति दूर करने के लिए वे छेंज (दंगल) देखते हैं। व विभिन्न क्रिड़ा में भाग लेते हैं। डुग्गर में प्रतिवर्ष बीसियों मेले लगते है। यहाँ के लोग युगों युगों से सामान्त, राणा साहुकार आदि से शोषित होते रहे हैं। यहा के गांवों में अभी भी संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था है।

एक गहरी साँस लेते हुए केदार जी ने कहा - टी.वी. और फिल्मी संस्कृति में सब कुछ स्वाहा होता जा रहा है। डुग्गर का प्राकृतिक रूप विगरता जा रहा है।

और उस रात मैं चैन से सो नहीं पायी, मेरा मन छटपटाता रहा संस्कार ! संस्कृति! सच तो यही है कि किसी भी राष्ट्र की असली पहचान उसकी संस्कृति ही है। हम एक राज्य से दूसरे राज्य में जाते हैं तो भिन्न भिन्न बोलियों और परिवेश के बीच एक ही भाव पाते हैं। एक ही जीवन मूल्य दृष्टिगत होता है।

हिमालय से कन्याकुमारी तक - पूर्व से पश्चिम तक

कश्मीर से कन्याकुमारी तक

भारतीय संस्कृति ने मानव को चलना सिखाया, जीना सिखाया, जीवन मूल्य बताया मगर इस उतार चढाव के मध्य इसके भीतर एक प्राणहीन एवं शिथिल परंपरा निःशब्द रूप से जन्म लेती रही। इक्कीसवीं सदी तक पहुँचते पहुँचते दुःखी, हताश मानव अपने हाथों ही अपने विनाश की सामग्री तैयार कर चुका होगा। भारत को स्वतंत्रता मिली, कितनी ही खून की नदियाँ पार करनी पड़ी। वंदेमातरम् जब लिख गया कौन जानता था कि ये गीत भारत के हृदया को प्रकंपित कर देगा। ये सब सिर्फ इसलिए हुआ कि भारत एकात्म रह सके। अखंड रह सके। क्या हिंदू क्या मुस्लिम क्या सिक्ख और क्या इसाई- सब के सब पागल हो गए थे मात्र एक ही प्रवाह में कि भारतमाता की गुलामी की बेड़ियाँ काटनी है। अब अगर हम लोग उनकी तपस्या उनका बलिदान भूल जाएँ तो ये धरती माँ जानकी की तरह पाताल में समा जायेगी। हमारी संस्कृति वास्तव में सीता ही तो है। वो कभी भी अवमानना नहीं सह सकतीं।

कोशी कमला के संपादक त्रिलोकनाथजी की सहज, सरल व्यक्तित्व स्मरण हो आता है।

उत्तर बिहार के कोसी कमला के किनारे बसे गाँव किस तरह से अपने संस्कार की रक्षा के लिए उतावले रहते हैं। और कोसी, कमला के माध्यम से इसे दर्शाते भी हैं। मगर! इस अनमोल देशसेवा का मोल कहाँ।

जम्मू से विदा लेते लेते लाभ जी से पूछ ही ली - आप भी तो मिथिला के हैं पाहुन जी और मैथिल भी है, आपको यहाँ कैसा लगता है।

डॉ. लाभ जी सुमनोहर व्यक्तित्व और मोहक मुस्कान के धनी हैं। मगर उनके उत्तर देने से पहले ही चपल चपला सी निहारिका चमक उठी नहीं नहीं यहाँ के लोग बड़े ही रूखे स्वभाव के हैं। थके हारे किसी के यहाँ जाइए तो एक कपच ाय के लिए भी नहीं पूछते। जबकि अपने मिथिला में तो........ बीच में ही बात काटते हुए लाभ जी ने कहा- नहीं नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। अपने मिथिला में भी कुछ लोग ऐसे मिल ही जाते हैं जो चाय तो क्या एक ग्लास पानी भी नहीं पूछते और जलपान की तो क्या कहें। अच्छे और बुरे लोग सब जगह होते हैं। मूलतः यहाँ के जो भी निवासी हैं वो सभी बहुत ही सज्जन व मिलनसार किस्म के होते हैं।

मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ जैसे निहारिका ने कहीं कोई गहरी चोट खाई है तभी वो ऐसी बातें कर रही है मगर लाभजी की बातों में सत्यता थी क्योंकि वहाँ का आतिथ्य हमें भी प्राप्त था और वो भी यहाँ के मूल निवासी से।

विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग में डोगरी भाषा पर कितने ही प्राध्यापक हँसते नजर आते हैं। और ऐसी परिस्थिति सिर्फ यहाँ की नहीं है बल्कि देश के किसी भी कोने मे चले जाइये इस तरह एक दूसरे पर कटाक्ष, आपेक्ष हर जगह देखने को मिल जाता है। मगर उसी जगह डोगरी भाषा के प्राध्यापक शिवदास सिंह मन्हास को अपनी भाषा और उसके लेखक-लेखिकाओं के प्रति कितना सम्मान का भाव था। सबों में साहित्य अकादमी पुरस्कार नहीं मिलने का आक्रोश था। जबकि पद्मा सचदेव पहली बार इसकी उपाध्यक्ष बनीं फिर भी पुरस्कार नहीं मिला। तब भी कोई उनके विरूद्ध कुछ भी नहीं बोल रहे थे। इसे ही एकात्मकता कहते हैं।

मन्हास जी भी अकादमी की यात्रा अनुदान से राजस्थान जा रहे थे, और मैं भी। हम दोनों ही अकादमी की तरफ से एक ही स्थान पर खड़े थे एक दूसरे के भाषा को जानते, समझते हुए।

मैथिली में कितने लेखक लेखिकाएँ हैं? मन्हास जी ने मुझसे पूछा। नये पुराने सब मिलाकर तकरीबन पाँच सौ। मेरा उत्तर सुनकर मन्हास जी चौंक गए। डोगरी के तीस लेखक- लेखिकाओं के समक्ष पाँच सौ उन्हं बहुत आश्चर्य हुआ।

मैंने कहा ये संख्या तो तब है जब प्रकाशन सुविधाओं के अभाव में बहुत सारे लोग प्रकाश में आ ही नहीं पाते हैं। और वहीं डोगरी संस्थान की तरफ से प्रकाशन की बहुत अच्छी सुविधाएँ व समुचित व्यवस्थाएँ हैं।

अपने कुछ दिनों के प्रवास के दौरान जम्मू की प्राकृतिकता वहाँ के व्यक्तियों की सरलता, निश्छलता से हम सब बंध से गए थे। राममंदिर, रावणेश्वर मंदिर, बागेबाहु आदि कितने ही धर्मस्थल व दर्शनीय स्थलों पर हम नतमस्तक होते रहें। सबसे ज्यादा खुशी और संतुष्टि तो इस बात की थी कि माता वैष्णों देवी यही पर्वताशिखर पर सघन अरण्य में निवास कर रही थी। और हमस ब उनकी चरण में स्थान प्राप्त कर लिया हो।

बी.आर. अम्बेडकर कॉलेज दिल्ली के इतिहास विभागाध्यक्षा मेरी पुत्रवधु जया वर्मा को ऐसी सांस्कृतिक आदान प्रदान की योजनाएँ बहुत पसन्द है। उसी समयकाल में मेरी द्वितीय पोत्री अदिती का जन्म हुआ।

अदिती के जन्म की कुछ बातें याद कर आज भी हँसी आ जाती है। संेटस्ओीफेन्स हास्पीटल दिल्ली में मेरी प्रथम पोत्री आरूषी का जन्म हुआ था 8 अगस्त 1990 को। हम लोग उस समय दिल्ली में थे। हास्पीटल के कंपाउण्ड में गरमी से बैहाल अपने दोनों बेटे राजीव और संजीव के साथ पूरी पूरी रात बेचैनी से गुजारते रहे मगर दूसरी रात जब मेरी पोत्री के जन्म की सूचना लाउड स्पीकर द्वारा दी गई उस समय हम तीनों बेखबर सोते रहे। ये नींद भी बड़ी अजीब है, जब हम सोना चाहें तो दूर भागती है और जब जागना चाहें तब पता ही नहीं कैसे, कहाँ और कब आकर हमारे पलकों पर अपना डेरा जमा ले पता ही नहीं चलता।

जिसे देखने के लिए जाने कब से ये आँखें तरस रही थी आज उसी को इस नींद की वजह से हमारा इंतजार करना पड़ गया। एक ड़ेढ़ घंटे बाद जब दुबारा उद्घोषणा हुई तब चौंककर हम तीनों एक साथ उठकर लेबर रूम (जच्चा बच्चा कक्ष) की तरफ भागे। मक्खन जैसी सुकोमल, सदान धन कुंतल के साथ मेरी पोत्री इस धरा पर आ गई थी।

और आज 03 फरवरी 1994 वही स्थान, वही परिस्थिति, वही हास्पीटल, वही प्रांगण प्रातः काल पाँच बजे, जैसे ही उद्घोषणा हुई मैं और राजू दोनों एक साथ भागे। और भागते-भागते ही राजू ने कहा- चलो मम्मी जल्दी से देखें कि कौन है - अदिति या आदित्य! जब जाकर देखी तो बिल्कुल अपने दादाजी का रूप लिए हमारी सुन्दर सलोनी गुड़िया हमारे जीवन में रंग भरने आ चुकी थी।

जया थोड़ी उदास थी उसे लगा जैसे दूसरी पोती देख कर हम लोग दु:खी न हो जाएँ! क्योंकि उस कालखण्ड की यही विडंबना थी। लोगांे की मानसिकता संकीर्ण होने लगी थी। बेटी को देखकर लोग डरने लगे थे। दहेज प्रथा जैसी कुरीति मुँह फाड़े खड़ी थी। पर हमारी सयानी प्यारी जया शायद ये भूल रही थी कि हम दोनों की सोच अलग थी। हम लोग बेटी को लक्ष्मी तुल्य मानते थे और मानते रहेंगें।

हमारी बहु जया तो हमारी आत्मा है फिर उसने ऐसा क्यों सोचा! मैंने उसे समझाया- बेटा और बेटी में भला क्या अंतर हो सकता है? हमने दोनों को हमेशा ही एक नजर से देखा है। बेटी हमें छोड़कर ससुराल चली जाती है और बेटे को नौकरी (रोटी-रोजी) के लिए हमसे दूर जाना पड़ता है। फिर भला क्या अंतर? और दूसरी बात ये कि मैं तो स्वयं ही सात बहने हूँ और मुझे भी चार प्यारी सी बेटी ईश्वर ने दी है। वर्मा जी भी कभी बेटियों को बेटे से कम नहीं आँका। सुपर्णा दिल्ली में ही अभी पी.एच.डी. कर रही है और तरूणा हिन्दी से एम.ए. दोनों ही अपने अपने विभाग की नेता और मेधाविनी छात्रा है। दोनों अपने पिता की प्यारी- दुलारी कंठहार बनी हुई है। बड़ी बेटी भावना पटना वि.वि. से इतिहास से एम.ए. कर वर्तमान में मुम्बई में रहती है। दामाद प्रकाशजी ओ.एन.जी.सी. में अभी उपअधीक्षण अभियंता

हैं। चिंकी और हनी दो फूलों से उसकी बगिया गुलजार है। भावना अपने सास-ससुर की आत्मा बन चुकी है। उस से छोटी बंदना लंदन में डाक्टर है और दामाद कौशलेन्द्र जी भी डाक्टर है। उसकी बगिया की फूल अंकिता है। वंदना अपने सास ससुर की बहू नहीं बल्कि बेटी है। उसी तरह मेरी बहू जया भी मेरे घर-आँगन की मनमोहक सुरभि है।

मेरी छहो संतान और हम दो, हम आठों व्यक्तियों के हृदय में एक भावना, एक विचार, एक ही रसधार बहती है जिसके अंतर में बहू और दामाद सबका संयुक्त रसधार प्रवाहित है। वैसे तो छोटे मोटे झगड़े व बहस तो सब में होते ही रहते थे मगर चेहरे पर हमेशा मुस्कान बनी रहती थी। सभी कमल फूल की भांति खिले खिले रहते थे।

पति-पत्नी के बीच तो सबसे ज्यादा झगड़े होते है लेकिन उसे हमेशा नजरअंदाज ही कर दिया जाता तो इनको क्यों नहीं? कहते भी हैं- जहाँ चार बर्तन हों तो खनकते ही हैं।

अरे! तुम कहाँ चली जाती हो?

वर्मा जी हमेशा ही मुझे वर्तमान में ले आते हैं। और कहते हैं – तुम्हारा मन क्यों भटकता रहता है? तुम जो काम करो तब सिर्फ उसी को देखो . एक बार में एक काम करो और उसी के बारे में सोचो।

और मैं हँस देती हूँ- पता नहीं कब तक ये मुझे समझते, सम्हालते रहेगें? मैं भी कैसी हूँ- चाहे कितनी भी व्यस्तता क्यों न हो सोचने के लिए, सपना बुनने के लिए हमेशा समय चुरा ही लेती हूँ। और हमेशा ही वर्माजी मेरी चोरी पकड़ ही लेते हैं। भला पकी हुई मिटटी भी कहीं दोबारा आकार ले सकती है? उनको फिर भी बहलाती हूँ- नहीं-नहीं ऐसे ही थोड़ा बच्चों में उलझ गई थी। उन्होने मुझे फिर टोका- तुम जम्मू से विदा ले रही हो ...... और उन्हें मैं कैसे समझाऊँ कि-नीहारिका, लाभजी और खासकर अंशु के मौसा- मौसी की मधुर स्वर -लहरियां मुझे बार बार अपने बच्चों की स्मृति की ओर ले जा रही है। और जब एक बार स्मृति सागर में गोता लगा ही दिया तो एक से दूसरी , दूसरी से तीसरी स्मृतियों की जैसे श्रृंखला बन ,कड़ी कड़ी जुटती जैसे मानस हार बनती चली जाती है।

दीदी ! सब से पहले आप ही यहाँ आयी है। माँ के बाद सभी भाई बहनों में आप ही तो---- भावावेश में लाभजी के स्वर काँप रहे थे ।

पाहुन! माँ के बाद मैं ही तो हूँ न? ---सपना का आनन अश्रुसिक्त हो गया था। वर्मा जी भी जितने उत्फुल्ल थे उतने ही व्यथा-बोझिल ।

सपना उनके पीछे पीछे उनकी सुख सुविधा के पीछे बेहाल रहती थी। अतिशय सुख भी मानव को भींगो देता है - बादलों के तरंग पर बीता स्वप्नवत जीवन खत्म हो रहा था, मगर क्या सच में तंरगित जीवन खत्म होता है ? पता नहीं मानव कहाँ से चलना आरंभ करता है? चलते चलते थक जाता है। एक गहरे निश्वांस और थकी दृष्टि से चारों ओर देखता है और अनायास ही चौंक जाता है - कहा हूँ मैं? ये तो वही स्थान है जहाँ से मैंने यात्रा आरंभ की थी। आखिर मेरी ये दौड़-धूप , भागम-भाग क्या अनुभूतियाँ ही बटोरती रह गयी ! अपने वास्तविक जीवन में भी व्यावहारिक नहीं बन सकी मैं ? वीणा के तार सी एक स्मृति सी झंकृत हो उठती है -- मैं किसी को पत्र भी लिखती हूँ तो कवित्वपूर्ण शैली में , भाव भरी-अनुभव भरी शैली मेरी , बेशक वो मेरे बच्चें हों , समधी, समधन या फिर मेरी प्रिय पाठक पाठिकाएँ- दोस्तों की तो कोई बात ही नहीं !!

एक बार मैं ने दिल्ली अपने बेटे-बेटियों को पत्र लिखा था , वे उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय में पढाई कर रहे थे ,बच्चों ने उस पत्र का पोस्टमार्टम कर मुझे पत्रोत्तर भेजा और जिसे पढ़ मैं रोने लगी थी- मेरे लिखने का तात्पर्य ऐसा तो नहीं था। तब मेरे भांजे उग्रनाथ जी ने मुझे बड़े शांत स्वरों में समझाया था- मामी, आप सिर्फ लेखक-लेखिकाओं को ही पत्र लिखा करें क्योंकि वो ही आपके पत्रों को समझ सकने में सक्षम हैं। उग्रजी कितनी अच्छी तरह मुझे समझ रहे थे। हँस पड़ी मैं- ये अनुभूतियाँ क्या मुझे कभी भी यथार्थ की धरातल पर जीने देती हैं ??

काल का ये दीर्घ अंतराल, जीवन के ये कटु मधु क्षण क्या उड़ते हुए कालखण्ड के साथ हम तिनके की भांति नहीं उड़ रहे हैं ? फिर क्या स्थायित्व, कैसी थकन, कौन सी तपन! यही तो है मानव जीवन! मगर मानव ऐसा ही जीवन जी पाता है क्या?

काम, क्रोध, मद, लोभ,मोह के मध्य क्या मानव संतुलित हो पाता है?

निरंतर बढती भावुकता से कभी-कभी मैं स्वयं परेशान हो जाती हूँ! मेरा लेखन मेरा ही पर्याय बन जाता है।

जो सच है उसका निषेध क्यों?

पृथ्वी अपने आवेग में दिन रात घूमती ही रहती है। तो क्या मेरी नियति भी पृथ्वी ही है ??

अंतहीन पथ पर शब्दहीन आमन्त्रण निरंतर उद्बोधते मुझे -- माईल्स टू गो- माईल्स टू गो-

---

अनुवादिका का संक्षिप्त परिचय

नाम - कल्पना झा
जन्म - 10.07 .1965
पिता -स्वर्गीय जगदीश झा
माता - स्वर्गीय रामरति देवी
पति -श्री सुधीर कुमार झा
निवास - एस ० पी० - 32 , द्वितीय तल
पांडव नगर
दिल्ली - 110092
सेवा - प्रधानाचार्या ज्ञाननिकेतन आदर्श विद्यालय (सेवानिवृत्त)
रूचि - अध्ययन और लेखन
उपलब्धि - श्रेष्ठ कविता लेखन के लिये अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मान
समाचार पत्र व अनेक पत्रिकाओं में रचना प्रकाशित
मैथिली में बाल-गीत कविता संग्रह’ निनियाँ ‘बहुचर्चित और लोकप्रिय हुई
प्रकाशनार्थ - मैथिली कथा संग्रह, मैथिली कविता संग्रह ,हिन्दी कविता संग्रह

संपर्क - 9354517553
ईमेल - kalpanajha.1965@gmail.com